पुस्तक-प्राप्ति-स्थान:—

(१) केशरलाल बख्शी

मन्त्री–श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला

"बख्शी भवन" न्यू कालोनी, जयपुर

(२) वीर पुस्तक भण्डार

श्री वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर

मुद्रक—

भँवरलाल जैन

श्री वीर प्रेस, जयपुर

प्रकाशकीय—

इसका निर्णय पाठक ही कर सकते है। मैं इसके लिए पडितजी साहब और दोनों सपादकों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि इन्होंने सेवाभाव से अपना अमूल्य समय देकर इस पुनीत कार्य को किया। मुझे आशा है आध्यात्मिक प्रेमी पाठक इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

प्रचार की दृष्टि से ही इस पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है। यदि पाठकों ने इसे अपनाया तो ग्रथमाला शीघ्र ही अन्य उपयोगी ग्रंथ लागत मात्र खर्चे मे निकालने मे समर्थ हो सकेगी। प्रूफ सशोधनादि मे जो अशुद्धिया रहगई हैं उनके लिए शुद्धि पत्र लगाया है। पाठक उससे पुस्तक को ठीक करके पढने का कष्ट करें, ऐसी प्रार्थना है।

केशरलाल बख्शी
मत्री
श्री नानूलाल स्मारक ग्रथमाला

बख्शी भवन
न्यू कालोनी, जयपुर।

★

सम्पादकीय

कवि बनारसीदासजी का जैन हिन्दी कवियों में सर्वोपरि स्थान है। बनारसीविलास–कवि की अनेक रचनाओं का संग्रह एक दीर्घ काल से अप्राप्य था और उसके प्रकाशन की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को भाई दीप चन्द्रजी पांड्या... ... जी साहब ने 'श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला' के मंत्री श्रीमान् बख्शी केशरलालजी साहब के सामने रखा और उन्होंने उक्त ग्रन्थमाला की ओर से इसका प्रकाशन कराना स्वीकार कर लिया। अनेक कारणों से हम इस प्रकाशन को हमारी इच्छानुसार सर्वांग सुन्दर नहीं बना सके, फिर भी जहां तक हम से हो सका है इसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

मग,

"मोहविवेक युद्ध कथा" के नाम से जयपुर के बड़े मन्दिर के शास्त्र भण्डार में कवि बनारसीदासजी की एक रचना और मिली है। इस रचना के सब मिलाकर ११८ पद्य हैं। रचना दोहे और चौपाई छन्दों में लिखी है। यह एक रूपक है जिसमें विवेक नायक और मोह प्रतिनायक है। मोह और विवेक में आपस में युद्ध होता है जिसमें विवेक की जीत होती है। कवि ने बड़े ही सुन्दर एवं सरल शब्दों में विषय का वर्णन किया है। किन्तु इस रचना के विषय में साहित्य प्रेमी श्री का कहना है कि यह किसी अन्य बनारसीदासजी की है जब कि श्री अगरचन्दजी नाहटा के मत-

इसका निर्णय पाठक ही कर सकते है। मैं इसके लिए पंडितजी साहब और दोनों संपादकों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि इन्होंने सेवाभाव से अपना अमूल्य समय देकर इस पुनीत कार्य को किया। मुझे आशा है आध्यात्मिक प्रेमी पाठक इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

प्रचार की दृष्टि से ही इस पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है। यदि पाठकों ने इसे अपनाया तो ग्रंथमाला शीघ्र ही अन्य उपयोगी ग्रंथ लागत मात्र खर्चे मे निकालने मे समर्थ हो सकेगी। प्रूफ संशोधनादि में जो अशुद्धिया रहगई हैं उनके लिए शुद्धि पत्र लगाया है। पाठक उससे पुस्तक को ठीक करके पढने का कष्ट करें, ऐसी प्रार्थना है।

केशरलाल बख्शी
मंत्री
श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला

बख्शी भवन
न्यू कालोनी, जयपुर।

★

सम्पादकीय

कवि बनारसीदासजी का जैन हिन्दी कवियों में सर्वोपरि स्थान है। बनारसीविलास—कवि की अनेक रचनाओं का संग्रह एक दीर्घ काल से अप्राप्य था और उसके प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को आदरणीय पं० चैनसुखदास जी साहब ने 'श्री नानूलाल स्मारक ग्रंथमाला' के मंत्री श्रीमान् बख्शी केशरलालजी साहब के सामने रखा और उन्होंने इस ग्रन्थ-माला की ओर से इसका प्रकाशन कराना स्वीकार कर लिया। अनेक कारणों से हम इस प्रकाशन को हमारी इच्छानुसार सर्वांग सुन्दर नहीं बना सके, फिर भी जहां तक हम से हो सका है इसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

"मोहविवेक युद्ध कथा" के नाम से जयपुर के बड़े मन्दिर के शास्त्र भण्डार में कवि बनारसीदासजी की एक रचना और मिली है। इस रचना के सब मिलाकर ११८ पद्य हैं। रचना दोहे और चौपाई छन्दों में लिखी है। यह एक रूपक है जिसमें विवेक नायक और मोह प्रतिनायक है। मोह और विवेक में आपस में युद्ध होता है जिसमें विवेक की जीत होती है। कवि ने बड़े ही सुन्दर एवं सरल शब्दों में विषय का वर्णन किया है। किन्तु इस रचना के विषय में श्रद्धेय प्रेमी जी का कहना है कि यह किसी अन्य बनारसीदासजी की है जब कि श्री अगरचन्दजी नाहटा के मता-

होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का रामचरितमानस भी साहित्य क्षेत्र में अविवेच्य हो जायगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य-सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा। वस्तुतः लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है। कभी कभी ये कहानियाँ पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों के साथ जुड़ादी जाती हैं। यह तो न जैनों की निजी विशेषता है और न सूफियों की। हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और बे-बुनियाद बात दृढ़ बद्ध पड़ी है कि लौकिक प्रेम-कथानकों को आश्रय करके धर्म भावनाओं को उपदेश देने का कार्य सूफी कवियों ने आरम्भ किया था। बौद्धों ब्राह्मणों और जैनों के अनेक आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिये लोक-कथानकों का आश्रय लिया था। भारतीय संतों की यह परम्परा परमहंस राम कृष्णदेव तक अविच्छिन्न भाव से चली आई है। केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देख कर यदि हम ग्रन्थों को साहित्य सीमा से बाहर निकालने लगेंगे तो हमें आदिकाव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा तुलसी-रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा" इस प्रकार हिन्दी भाषा भारत में ८ वीं शताब्दी अथवा इससे भी पूर्व विद्यमान थी एवं यहाँ के निवासियों की बोलचाल की भाषा थी।

में उचित स्थान मिल ही जावेगा। लेकिन इसमें कुछ गल्ती जैनों की ओर से भी हुई। उन्होंने अपने साहित्य को प्रकाश में लाने की चेष्टा नहीं की। इसलिये जो कुछ साहित्य यहाँ के विद्वानों को मिला उसी के आधार पर उन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। और जब एक बार कोई अधिकारी विद्वान किसी तथ्य को उपस्थित कर देता है तो वह जल्दी से यों ही नहीं बदला जा सकता और आगे होने वाले उसी को सही मानकर चलने लगते हैं।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य का जन्म आठवीं शताब्दी में होगया था और इसी के आधार पर उसका काल विभाग किया जा रहा है। प्रस्तुत प्रस्तावना में क्योंकि जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास को ही संक्षिप्त रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है इसीलिये, जैन हिन्दी साहित्य के ही निम्न काल विभाग करके उसका आगे वर्णन किया जावेगा।

अपभ्रंश काल— ८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक
अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल १३ वीं १४ वीं शताब्दी
हिन्दी का प्रारम्भिक काल १५ वीं १६ वीं शताब्दी
हिन्दी का मध्य काल १७ वीं से १९ वीं शताब्दी
वर्तमान काल २ वीं शताब्दी

अपभ्रंश काल—८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक—

८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक के समय को अपभ्रंश काल कहा जा सकता है। हिन्दी इस युग में हमारे सामने

जब उवयार यो सार बढ़मि उव भारह ।

तो सम्मातड्डी हमर छड्डु पसर जब पाव ॥

स्वयम्भू के पश्चात् १० वीं शताब्दी में होने वाले कवियों में देवसेन, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, रामसिंह, धनपाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें देवसेन ने दर्शनसार, तत्त्वसार और सावयधम्म दोहा, पुष्पदन्त ने महापुराण, जसहरचरिउ एवं णाय-कुमारचरिउ, पद्मकीर्ति ने पासणाहचरिउ, मुनि रामसिंह ने दोहा पाहुड और धनपाल ने भविसयत्तकहा नामक काव्यों की रचना की थी। वैसे तो इस शताब्दी में होने वाले सभी कवियों की रचनायें उत्कृष्ट हैं किन्तु महाकवि पुष्पदन्त इस युग के सबसे उत्कृष्ट आचार्य हुये जिन्होंने अपनी रचनाओं के बल पर अपभ्रंश भाषा के साहित्य को उच्च स्थान प्राप्त करवाया। इनकी भाव, भाषा एवं शैली सभी उल्लेखनीय है। अपभ्रंश के स्वयम्भू और पुष्पदन्त को हम हिन्दी के तुलसी एवं सूरदास की कोटि में बिठा सकते हैं लेकिन दुःख की बात तो यह है कि ऐसे महाकवियों के साहित्य को भी हिन्दी साहित्य में कोई उचित स्थान नहीं मिला।

पुष्पदन्त एवं सूरदास की कृष्ण बाललीला वर्णन में कितना साम्य है इसका हम एक उदाहरण पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। दोनों कवियों के द्वारा किये हुये वर्णन को पढ़ कर हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनकी भाव भाषा एवं शैली में कितनी समता है—

..नगु रमतु रमते मथउ, घरिउ ममनु अगते।
सद्दीउ ताडिवि आवहिउ, अद्ध विरोलिउ दहिउ पलोहिउ॥
का वि गावि गाविंदहु लग्गी, एह महारी कयगि मग्गी।
...हि मोन्तु दउ आलिंगणु, खं तो मा मेल्लहु मैं अंगणु॥

चोरी करत कान्ह धरि पाये।
निसि बासर मोहि बहुत सताये, अब हरि हाथहि आये।
माखन दधि मेरो सब खायो, बहुत अचगरी कीन्हीं।
अब तो घात परे हो ललना, तुम्हें भले मैं चीन्हीं।
दोउ भुज पकरि कह्यो कहं जैहो, माखन लेउ मंगाइ।
तेरी सौं मैं नेकु न खायो, सखा गये सब खाइ।
मुख तन चितै विहँसि हरि दीन्हो, रिस तब गई बुझाई।
लियो स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ। महाकवि सूरदास॥

११ वीं एवं १२ वीं शताब्दी में होने वाले कवियों में कनकामर, जिनदत्तसूरि वीर, श्रीचन्द्र, यशःकीर्ति और नयनन्दि उल्लेखनीय हैं। इनमें कनकामर ने करकण्डुचरिय, जिनदत्तसूरि ने चर्चरी उपदेशरसायन रास एवं कालस्वरूप कुलक, वीर ने जम्बूस्वामीचरिउ नयनन्दि ने सुदंसणचरिउ, श्रीचन्द्र ने रत्नकरण्ड शास्त्र, एवं कथाकोश श्रीधर ने पासणाहचरिउ, भविसयत्तचरिउ एवं सुकुमालचरिउ आदि उल्लेखनीय रचनायें हैं। महाकवि धवल भी इसी शताब्दी में हुये जिन्होंने अपनी रचनाओं को बहुत ही उत्तम रूप से उपस्थित किया। नयनन्दि के सुदंसणचरिउ भाषा

ही अलंकारमय है। श्लेष और उपमा कवि के अत्यधिक प्रिय अलंकार थे जिनका इस काव्य में स्थान २ पर उपयोग किया गया है। स्वयं वीर ने अपने काव्य जम्बूसामी चरिउ को वीर एवं शृंगार रसात्मक कहा है।

अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल—

१३वीं १४वीं शताब्दी को हम अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी काल कह सकते हैं। यद्यपि इन दो शताब्दियों में अपभ्रंश में अत्यधिक साहित्य की रचना हुई किन्तु उसके साथ अपभ्रंशमय हिन्दी रचनायें भी हमारे सामने आयीं। अपभ्रंश भाषा के कवियों में महाकवि अमरकीर्ति प० लाखू, हरिभद्र धाहिल, नरसेन, सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अमरकीर्ति ने छक्कम्मोवएस, लाखू ने जिणयत्तचरिउ हरिभद्र ने णेमिणाहचरिउ, धाहिल ने पउमसिरिचरिउ, नरसेन ने वड्ढमाणकहा और सिरिवालचरिउ तथा सिंह ने पज्जुण्णकहा की रचना की थी। महाकवि अमरकीर्ति का छक्कम्मोवएस बहुत ही सुन्दर एवं सरल काव्य है। इस काव्य में सामान्य पुरुष के जीवन का चित्रण किया गया है। धाहिल का पउमसिरिचरिउ भी सुन्दर काव्य है जो मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित भी हो चुका है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि इस काल में जैन विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषा में भी रचनायें लिखा जाना प्रारम्भ हो गया था। इसकाल की रची हुई हिन्दी रचनाओं में श्री धम्मसूरि

का जम्बूस्वामी रासा, विनयचन्द्रसूरि की नेमिनाथचउपई, अम्बदेय-कृत सघपतिसमरा रास, और घेल्ह कृत चउवीसी गीत उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनमें से प्रथम तीन रचनाओं की भाषा को राजस्थानी भी बतलाया जाता है किन्तु फिर भी उन्हें प्राचीन हिन्दी रचनाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। क्योंकि प्राचीन हिन्दी और प्राचीन राजस्थानी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जम्बूस्वामीरासा का एक उद्धरण देखिये —

जम्बूदीवि सिरिभरह खित्ति तिहिं नयर पहाणउ।
राजगृह नामेण नयर पहुवी वक्खाणउ।
राज करइ सेणिय नरिंद नर वरहँ जु सारो।
तासु तणइ (अति) बुद्धिवंत मति अभयकुमारो॥

चउवीसी गीत भी प्राचीन हिन्दी की एक सुन्दर रचना है जो अभी जयपुर के बड़े मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुई है। यह सवत् १३७१ की रचना है तथा घेल्ह इसका कवि है। इसमें चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। आदिनाथ स्वामी के स्तवन का एक पद देखिये—

णाभि नरिंदु नरेसरू मरुदेवी सुकलत्ता।
तसु उरि रिसहु उवरणो अवध वदाहि कत्ता॥
पुणि कहि हउ आउस पमाणु जिहि जेती सत्ता।
आदिनाथ जिण कहिय आउ पुव्व चउरासी लक्खा॥
वृषभ तासु तल लछणु अति सरूपु सुरतारु।

जोमुत अस्त्र धर्मनैमक महुतइ पथ तरौर ॥
पड पद्म तवे रिंग मौतर बंध निरुप् ।
बैनगर निरिस बरैन निम्मान पहु तु ॥

हिन्दी का प्रारम्भिक काल—

१५ वी और १६ वी शताब्दी को हम हिन्दी का प्रारम्भिक काल कह सकते हैं। इन दो शताब्दियों में संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के कवियों का ध्यान भी हिन्दी भाषा की ओर जाने लगा तथा उन्होंने संस्कृत और अपभ्रंश के साथ साथ हिन्दी में रचना लिखना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे आचार्यों में भट्टारक सकलकीर्ति और ब्रह्म जिनदास का नाम उल्लेखनीय है। ये दोनों ही संस्कृत के भारी ऊंचे विद्वान थे क्योंकि अकेले सकल कीर्ति ने संस्कृत में आदिपुराण, पुराणसारसंग्रह, धन्यकुमार चरित्र, यशोधर चरित्र वर्द्धमानपुराण आदि ग्रन्थों की रचना की थी इसी प्रकार ब्रह्म जिनदास ने भी संस्कृत में १२ से अधिक रचनायें लिखी हैं जिनमें हरिवंशपुराण पद्मपुराण जम्बूस्वामी चरित्र हनुमच्चरित्र व्रतकथा कोश आदि उल्लेखनीय हैं। भट्टारक सकलकीर्ति की हिन्दी रचनाओं में णमोकारफलगीत एवं आराधनासार अभी तक उपलब्ध हुये हैं। यद्यपि दोनों ही विस्तृत रचनायें नहीं हैं किन्तु हिन्दी भाषा के विकास जानने के लिये ये कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

ब्रह्म जिनदास की हिन्दी रचनाओं पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। इनकी हिन्दी रचनाओं में आदिनाथ

पुराण, श्रेणिकचरित्र, सम्यक्त्वरास, यशोधररास, धनपालरास, व्रतकथाकोष आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी शताब्दी मे श्वेताम्बर साधु श्री विनयप्रभ ने गौतमरासा की रचना सवत् १४१२ में की थी तथा जिनउदयगुरु के शिष्य और ठक्कर माल्हे के पुत्र विद्धणू ने ज्ञानपचमी चउपई की रचना सवत् १४२३ में समाप्त की थी। प्रथम रचना मे गौतम स्वामी का चरित्र चित्रण किया गया है जिसका वर्णन काफी सुन्दर हुआ है। दूसरी रचना मे श्रुतपञ्चमी की कथा का वर्णन किया गया है। गौतमस्वामी रासा के एक पद्य का रसास्वादन कीजिये जिसमें उनकी सुदरता का वर्णन किया गया है—

जिम सहकारइ कोयलि टहकउ, जिम कुसर मह वनि परिमल वहकउं।
जिम चदन सो गघनिधि, जिमि गगाजल लहरे लहकइ।
जिम कणयाचल तेजिहिं झलकिइ तिम गोयम सोभा गनिधो॥ ३६॥

१६ वीं शताब्दी मे जैनो ने हिन्दी भाषा मे काफी साहित्य लिखा। कुछ उच्च श्रेणी के भी कवि हुए। इन कवियों में सवेगसुन्दर, कक्कसूरि, बीहल्ल, छीहल, धर्मदास, ठक्कुरसी के नाम उल्लेखनीय हैं। सवेगसुन्दर ने सारसीखामणरास की सवत् १५४८ मे रचना की थी। इसी प्रकार श्री कक्कसूरि ने सवत् १५७४ मे धन्नाचउपई की रचना समाप्त की। बीहल्ल कविने १५७५ में पञ्चसहेली की रचना की तथा छीहल कवि ने १५८४ मे बावनी को समाप्त किया। इसी समय धर्मदास ने भी धर्मोपदेशश्रावकाचार

को सम्वत् १४५८ में समाप्त किया। रचना की भाषा बड़ी सुन्दर है। इसमें जैन धर्म के सिद्धान्तों का बड़ी ही अच्छी तरह समझाया गया है। इस शताब्दी की यह सबसे बड़ी रचना है। इस का एक उदाहरण देखिये जिसमें कवि ने ग्रन्थ समाप्ति का समय दिया है—

पन्द्रहसै अट्ठावनि वरिस, संवच्छर अवसाण का वरह।
निर्मल वैसाखी सकलीय गुणभरि मुनिवृन्द गम्भीर।
ता दिन पूरी किनी बहु मन निर्मल धर्म मती जो पंथ।
गंगा का यह निर्मित इन्ह परम तप मनिमन बहु अरह।

इसी समय श्री चतुरुमल कवि ने भी नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह रचना सवत् १५७१ की है तथा इसमें नमिनाथ स्वामी के विवाह समय की घटना से लेकर राहुल के दीक्षा समय का वर्णन किया गया है।

मध्य काल

१७ वी १८ वी और १९ वी शताब्दी जैन हिन्दी साहित्य के लिये ही नहीं किन्तु हिन्दी साहित्य के लिये भी सर्वोत्कृष्ट काल रहा। इन तीन शताब्दियों में हिन्दी साहित्य की चहुँमुखी उन्नति हुई। महाकवि तुलसीदास बनारसीदास बिहारी, रसखान, सूरदास आदि जितने भी उच्च कवि हुये वे सब इन्हीं तीन शताब्दियों में हुये। इन कवियों ने हिन्दी साहित्य के उत्थान के लिये अपने जीवन की बाजी लगा दी। यदि इन तीन शताब्दियों के साहित्य

को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जावे तो फिर हिन्दी साहित्य निर्जन वन के समान मालूम पडेगा।

जैन हिन्दी साहित्य मे भी इन तीन शताब्दियों मे अनेक कवि एव लेखक हुये जिन्होंने हिन्दी साहित्य के भण्डार को भर दिया। दूसरी विशेषता इस काल की यह रही कि १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी गद्य का स्वरूप भी हमारे सामने आया इससे हिन्दी के पठन पाठन एव स्वाध्याय का'और भी प्रचार वढा।

१७ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक कवियों मे श्री कुमुदचन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने सवत् १६०० मे लिखना प्रारम्भ किया था। कवि की वाहुबलि छन्द, त्रेपनक्रिया, ऋषभ विबाहलो, शीलगीत आदि रचनायें मिलती हैं, इनमे भरतवाहुबलि छन्द विशेष उल्लेखनीय रचना है।

ब्रह्म रायमल १७ वीं शताब्दी के प्रथम पाद के कवि हैं। सभी रचनाओं की प्रशस्तियों में इन्होंने अपने आपको मुनि अनन्तकीर्त्ति का शिष्य लिखा है। नेमीश्वररास कविवर की उपलब्ध रचनाओं में प्रथम रचना है। इसका रचना सवत् १६१५ है। इसके अतिरिक्त हनुमतकथा, प्रद्युम्नचरित्र, सुदर्शनरासो, निर्दोषसप्तमीव्रतकथा, श्रीपालरासो, भविष्यदत्त कथा आदि रचनायें उपलब्ध हैं।

पाण्डे जिनदास ने सवत् १६४२ में जम्बूस्वामी चरित्र की रचना

समाप्त की। इसके अतिरिक्त योगीरासा एवं ज्ञानसूर्योदय नाटक ग्रन्थ और मिलता है।

कविवर रूपचन्दजी १७ वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवि थे। उप लब्ध रचनाओं के आधारपर यह कहा जा सकता है कि इनकी कवित्व शक्ति बहुत ही उच्च श्रेणी की थी। कविवर ज्ञान कला के रस में भीगे रहते थे। परमार्थ चर्चा ही उनका मुख्य ध्येय था। महाकवि बनारसीदास ने इनको आगरा नगर की प्रमुख तथा प्रसिद्ध ज्ञानगोष्ठी का प्रथम विद्वान होना लिखा है। आपने जो कुछ साहित्य लिखा अधिकांशतः वह आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत किया हुआ है। आपकी अभी तक परमार्थदोहाशतक, परमार्थ गीत, पदसंग्रह, गीत परमार्थी, पंचमंगल नेमिनाथरास आदि रचनायें प्राप्त हुई हैं। सभी रचनायें उच्च कोटि की हैं। इसका एक उदाहरण देखिये—

> गुरु बिन भेद न पाइये को पर को निज वस्तु
>
> गुरु बिन भव सागर विषै परत गहै को हस्तु॥
>
> रूपचन्द सतगुरुनि की जन बलिहारी जाय।
>
> आपुन जे शिवपुर गये, भव्यनि पंथ दिखाय॥

उक्त कवियों के अतिरिक्त इस शताब्दी में होने वाले कवियों में ब्रह्म गुलाल त्रिभुवनचन्द्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाकवि बनारसीदास भी इसी शताब्दी के कवि थे जिनका स्थान जैन हिन्दी साहित्य में सर्वोत्कृष्ट है। इनका पूर्ण परिचय आगे दिया जायेगा।

इस शताब्दी के श्रेष्ठ कवियों में भैय्या भगवतीदासजी का नाम लिया जा सकता है। ये आगरा के रहने वाले थे। इन्होंने अनेक विषयों पर अपनी रचनाएँ लिखी हैं। कविवर हिन्दी संस्कृत फारसी गुजराती आदि भाषाओं के अच्छे विद्वान थे। आपकी रचनायें प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं। कविवर का 'ब्रह्मविलास' उनकी विभिन्न रचनाओं का संग्रह है। इन्होंने अपनी रचनाओं में आत्म-कल्याण की भावना प्रदर्शित की है। किसी को रिझाने के लिये अथवा अपने आप के आनन्द के लिये कविता रचने का इनका बिलकुल ध्यान नहीं था। इनके एक पद का नमूना देखिये जो कितना मधुर एवं सरल है—

कहा परदेशी को पतियारो।
मन माने तब चलै पंथ को, सांझ गिनै न सकारो।
सबै कुटुम्ब छांड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो॥
दूर दिशावर चलत आपही, कोउ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो॥
धन सों राचि धरम सों भूलत, झूलत मोह मंझारो।
इहि विधि काल अनन्त गमायो, पायो नहिं भव पारो॥
सांचे सुखसों विमुख होत हो, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे भैया, आप ही आप संभारो॥

भैय्या भगवतीदासजी के समकालीन महान संत आनन्दघन हुए। संत-साहित्य के विशेषज्ञ एवं अध्ययनशील विद्वान्

अनेक पूजाओं की रचना की जो आज प्रत्येक स्थान पर पढ़ी जाती हैं। इनकी भाषा एवं शैली अच्छी है जिसमें कठिन विषय को भी सरल करके समझाया गया है।

१८ वीं शताब्दी में उक्त कवियों के अतिरिक्त मनोहरलाल, खरगसेन, जोधराज गोदीका, खुशालचन्द काला, किशनसिंह आदि और भी कवि हुये। इनमें मनोहरलाल ने धर्मपरीक्षाभाषा, खरगसेन ने त्रिलोक दर्पण कथा, जोधराज ने सम्यक्त्वकौमुदी, धर्मसरोवर, पद्मनन्दि पंचविंशति आदि तथा किशनसिंह ने क्रियाकोश आदि की रचनायें की थी। ये सभी रचनायें कितनी ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं।

१६ वीं शताब्दी में उल्लेखनीय कवियों में पं० दौलतरामजी पं० टोडरमलजी पं० जयचन्दजी छावड़ा वृन्दावनजी आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। इस शताब्दी में पद्य साहित्य की अपेक्षा गद्य साहित्य का अधिक निर्माण हुआ। हिन्दी भाषा के प्रचारा-धिक्य से एवं स्वाध्यायप्रेमियों की मांग के अनुसार विद्वानों ने संस्कृत एवं प्राकृत अपभ्रंश ग्रन्थों का सरल हिन्दी में अनुवाद अथवा भाषान्तर किया जिससे हिन्दी भाषा के ग्रन्थों के प्रचार में एवं स्वाध्याय में उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

पं० दौलतरामजी ने पुण्याश्रवकथाकोश क्रियाकोश अध्यात्म-बारहखड़ी, वसुनन्दिश्रावकाचार भाषा पद्मपुराणभाषा हरिवंश-पुराणभाषा आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इनकी भाषा बहुत

सरल है। इस पर ढूढारी भाषा का अत्यधिक प्रभाव है। जैन समाज मे इनके लिखे हुये ग्रन्थों की स्वाध्याय का अत्यधिक प्रचार है। वे राजस्थान मे ही नहीं पढे जाते किन्तु गुजरात मे एव दक्षिण मे भी उनका अत्यधिक प्रचार है।

पण्डितप्रवर टोडरमलजी भी इसी शताब्दी के रत्न हैं। अपने समय के ये सर्व श्रेष्ठ साहित्यिक, विद्वान् एव समाज सुधारक थे। ये केवल २८ वर्ष तक ही जीये और इतने से अल्पकाल में गोम्मटसारवचनिका, त्रिलोकसारवचनिका, आत्मानुशासनभाषा, पुरुषार्थसिद्धयुपाय भाषा एव मोक्षमार्गप्रकाश आदि ग्रन्थों की रचनायें की। आप का ज्ञान पारदर्शी था। इसीलिये आप गोम्मटसार एव त्रिलोकसार जैसे गूढ अर्थ वाले ग्रन्थों की सरल एव बोधगम्य वचनिकायें लिखीं। मोक्षमार्ग प्रकाश आपकी स्वतन्त्र रचना है इसमे जैनसिद्धान्त का गभीर विवेचन किया गया है। इसकी भाषा भी ढूढारी है। आजकल के हिन्दी गद्य से वह बहुत कुछ मिलती जुलती है। क्रिया पदों और कारक प्रत्ययों के बदलने मात्र से ही वह आजकल की खडी बोली बन सकती है।

प० जयचन्दजी छावडा का गद्य लेखकों मे महा पडित टोडरमलजी एव दौलतरामजी के बाद का स्थान है। इन्होंने सर्वार्थसिद्धि, परीक्षामुख, द्रव्यसग्रह, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा, समयसार, देवागमस्तोत्र, अष्टपाहुड, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों की भाषा वचनिकायें लिखी। इनकी गद्य शैली भी उत्तम है।

श्री वृन्दावनजी १६ वीं शताब्दी के श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। इन्होंने छन्दशतक, प्रवचनसार टीका, चतुर्विंशतिजिनपूजापाठ, तीस-चौबीसी-पूजापाठ वृन्दावन-विलास आदि रचनायें की थी। इनमें स्वाभाविक कवित्व शक्ति थी। प्रत्येक विषय को सरल शब्दों में प्रस्तुत करना इन्हें खूब आता था। इसीलिये इनकी कविता में स्वाभाविकता और सरलता दोनों ही मिलती हैं।

इसी प्रकार जैन हिन्दी साहित्य में और भी कवि एवं लेखक हुये जिन्होंने अपनी रचनायें लिखकर हिन्दी भाषा के प्रचार एवं पठनपाठन में अत्यधिक सहयोग दिया। यद्यपि अधिकांश जैन कवियों ने अपनी रचनाओं के विषय को धर्मप्रधान एवं अध्यात्म प्रधान ही रखा है किन्तु इस प्रकार के साहित्य में भी कितने ही स्थानों पर तो हमें उत्तम काव्य के दर्शन होते हैं। इसलिये हिन्दी साहित्य के विद्वानों को चाहिये कि वे जैन साहित्य के खोज एवं प्रचार की ओर ध्यान दें एवं उसकी रचनाओं को उचित स्थान देने का प्रयत्न करें।

महाकवि बनारसीदास

१५ वीं शताब्दी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस शताब्दी मे तुलसीदास, केशवदास, बनारसी-दास, बिहारी, भूषण, सेनापति, रहीम आदि कितने ही महाकवि हुये जिन्होंने हिन्दी भाषा में सर्वोत्कृष्ट रचनायें निबद्ध करके उसे अमर बना दिया। जैन कवि बनारसीदास भी इसी शताब्दी के महान प्रतिभाशाली कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में त्रिकालावाधित रचनाये लिखकर इसके साहित्य भण्डार की श्री वृद्धि की है। वास्तव मे यदि इस शताब्दी मे ये कविगण न हुये होते तो हिन्दी भाषा इतनी जनप्रिय भाषा न बनी होती जितनी वह आज है।

बनारसीदासजी का स्थान हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य में कबीर के समकक्ष कहा जा सकता है। बनारसीदासजी की काव्यत्व शक्ति नैसर्गिक थी। इनकी सूझ निराली थी तथा इनकी शैली में आकर्षण था। यही कारण है कि इनके द्वारा लिखे हुये साहित्य को जैन हिन्दी साहित्य मे सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया। लेकिन दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक विद्वानों ने अपने हिन्दीसाहित्य के इतिहास में नामोल्लेख के अतिरिक्त इनकी सेवाओं का कोई मूल्याकन नहीं किया जब कि इनके द्वारा लिखा साहित्य हिन्दी के अनेक कवियों के साहित्य के

समझा रखा जा सकता है। कविवर द्वारा लिखा हुआ अर्द्धकथानक तो अपने ढंग की प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट प्राचीन रचना है।

बनारसीदासजी का जन्म सवत् १६४३ में जौनपुर नगर में हुआ था। प्रारम्भ में इनका नाम विक्रमाजीत था लेकिन बाद में बनारस के एक पुजारी के कहने से इनका नाम बनारसीदास रखा गया। कवि के पिता का नाम खरगसेन था। ये श्रीमाल जाति के थे और बीहोलिया इनका गोत्र था। अर्द्धकथानक में लिखा है कि बिहोली गांव राजपूतों की एक बस्ती थी जो एक जैन मुनि के उपदेश से जैन बन गयी थी। इसमें अपने आपको श्रीमाल जाति एवं बीहोलिया गोत्र से प्रसिद्ध किया।

बनारसीदासजी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। बचपन में इनका लालन पालन बड़े लाड़ प्यार से किया गया था। ७ वर्ष की अवस्था से इन्होंने विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। इनके गुरु कविवर रूपचन्दजी थे जो स्वयं ही पहुंचे हुये आध्यात्मिक कवि थे। इनकी बुद्धि प्रखर थी तथा विषय को जल्दी ही ग्रहण करलेती थी, इसलिये थोड़े वर्षों में ही इन्होंने काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके पश्चात् इन्होंने पढ़ना बन्द कर दिया लेकिन १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने फिर प. देवीदासजी के पास पढ़ना प्रारम्भ किया तथा नाममाला ज्योतिषशास्त्र अलंकारशास्त्र एवं कोकशास्त्र का थोड़ा अध्ययन किया।

बनारसीदासजी का प्रथम विवाह १० वर्ष की अवस्था में हुआ

था। इनकी यह पत्नी बडी सुशीला सतोषी एव पतिसेवापरायणा थी, लेकिन विवाह के करीब १५-१६ वर्ष बाद इसकी मृत्यु हो गयी। इससे बनारसीदासजी को बहुत दु ख हुआ। इसके पश्चात् कविवर के और भी दो विवाह हुये किन्तु वे अपनी प्रथम पत्नी के गुणों का कभी विस्मरण नहीं कर सके। तीनों पत्नियों से आपके ९ बालक हुये किन्तु सभी बालक पैदा होने के कुछ दिनों बाद ही मर गये। कविवर का अन्तिम बच्चा ९ वर्ष का होकर मरा। इस बालक को खोकर तो इन्हें जीवन से एक दम निराशा हो गयी और उन्हें ससार बहुत भयानक प्रतीत होने लगा, जैसा कि उनके निम्न उद्गार से मालूम पडता है—

नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोय।
ज्यौं तरवर पतझार है रहै ठूठ से दोय ॥

युवावस्था के पदार्पण करते ही बनारसीदासजी अनगरग मे मस्त हो गये थे। इनके सिर पर इश्कबाजी का नशा चढ गया था। रातदिन इनका ऐसी ही बातों की चर्चाओं मे व्यतीत होता था। इसी समय इनको कविता करने का भी शौक हो गया था। लेकिन इश्कबाजी मे फसे रहने के कारण ये श्रृगाररस की ही अधिकाश कवितायें लिखने लगे। इसी समय इन्होंने एक हजार पद्यों वाली एक पुस्तक की भी रचना की। यद्यपि इस पुस्तक मे सभी रसों से सम्बन्धित कविताएँ थीं लेकिन सबसे अधिक इस पुस्तक मे जो सामग्री थी उसका सम्बन्ध श्रृगाररस

से ही था। बनारसीदासजी कितने ही साधु संन्यासियों के जाल में फंसे रहे और जैसा उन्होंने कहा वैसा ही बनारसीदास जी ने किया। संवत् १६६२ में बादशाह अकबर की मृत्यु हुई। मृत्यु के समाचार सुनकर बनारसीदासजी को इतना अधिक दुःख हुआ कि वे यह समाचार सुनते ही गिर पड़े। इसके बाद उनके जीवन में परिवर्त्तन आया। वे साधु संन्यासियों के चक्कर से निकल गये तथा शृंगाररस के स्थान में आध्यात्मिक रस का गुणगान करने लगे। उनको अपने अबतक के अश्लील जीवन से घृणा हो गयी तथा अबतक उन्होंने जो शृंगाररस से सम्बन्धित कवितायों की रचना की थी उसे भी उन्होंने गोमती नदी में सदा के लिये बहा दिया। हिन्दी साहित्य एवं जैन साहित्य दोनों के लिए ही यह एक अप्रिय घटना रही। यदि यह रचना बची हुई होती तो जैन कवियों पर जो केवल आध्यात्मिक होने का आरोप लगाया जाता है वह सदा के लिये दब जाता। इस के बाद तो कवि का सम्पूर्ण जीवन ही दूसरी दिशा में प्रवाहित होना था जैसा कि स्वयं कवि ने कहा है—

> तिस दिन सौं बनारसी करी धर्म की चाह।
>
> तजी आसिखी फासिखी पकरी कुल की राह॥

व्यापारिक जीवन—

२१ वर्ष तक बनारसीदासजी ने कोई काम धन्धा प्रारम्भ नहीं किया। २४ वें वर्ष में कवि के पिता खरगसेनजी ने इन्हें घर का

दासजी से अध्ययन करने का अवसर मिला था। आगरे में इनका अर्थमल्लजी से संसर्ग हुआ। अर्थमल्लजी सदा ही अध्यात्म रस में सने हुवे रहते थे। इन्होंने बनारसीदासजी को पं० राजमल्ल कृत हिन्दी बालावबोधिनी टीका सहित समयसार नामक ग्रन्थ स्वाध्याय करने को दिया। इसका स्वाध्याय करने के पश्चात् ये निश्चय नय के एकान्त अज्ञानी बन गये और बाह्य क्रियाओं को सर्वथा छोड़ बैठे। लेकिन जब इन्हें पं० रूपचन्दजी से गोम्मटसार नामक सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़ने का सौभाग्य मिला तब इनको वस्तु स्थिति का बोध हुआ। आगरे में इन्हें पं० रूपचन्दजी के अतिरिक्त अन्य विद्वानों के साथ रहने का भी अवसर मिला था। इन विद्वानों में चतुर्भुजजी, भगवतीदासजी धर्मदासजी, कुंवरपालजी और जगजीवनजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान आध्यात्मिक चर्चा में गहरा रस लिया करते थे और रात दिन उसी की चर्चा में मस्त रहते थे।

जैन विद्वानों के अतिरिक्त इन्हें अन्य विद्वानों से भी भेंट करने का अवसर मिला था ऐसी भी कितनी ही किंवदन्तियां प्रचलित हैं। इन विद्वानों एवं सन्तों में सुन्दरदासजी एवं तुलसीदासजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सुन्दर ग्रन्थावली के सम्पादक पं० हरिनारायणजी शर्मा बी० ए० ने ग्रन्थावली की भूमिका में एक स्थान पर लिखा है—"प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदासजी के साथ सुन्दरदासजी की मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजी के साथ उनका संसर्ग हुआ था। बनारसीदासजी

सुन्दरदासजी की योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारों से मुग्ध हो गये थे। तभी उतन श्लाघा मुक्तकण्ठ से उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी वनारसीदासजी भी तो थे। इनके गुणों से सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये इसी से वैसी अच्छी प्रशसा उन्होंने भी की थी।"

इसी प्रकार बनारसीदासजी की महाकवि तुलसीदासजी से भी कितनी ही बार भेंट हुई थी। यह भी कहा जाता है कि इनको महाकवि ने रामायण की एक प्रति भेंट की थी। कुछ वर्षों के बाद जब कविवर की गोस्वामीजी से भेंट हुई तब तुलसीदासजी ने रामायण के काव्य सौंदर्य के सम्बन्ध मे जानना चाहा जिसके उत्तर में कविवर ने प्रसन्न होकर निम्न कविता उसी समय सुनाई थी—

विराजै रामायण घट मांहि।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहिं॥
आतमराम ज्ञान गुन लछमन, सीता सुमति समेत।
शुभोपयोग वानरदल मंडित, वर विवेक रण-खेत॥
ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयादिति भाग।
भई भस्म मिथ्यामति लंका, उठी धारणा आग॥
जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरे निकांछित सूर।
जूझे राग द्वेष सेनापति संशयगढ चकचूर॥
बिलखत कुम्भकरण भव विभ्रम, पुलकित मन दरयाव।
थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबंध समभाव॥

पुष्टि अन्तोदरी दुराशा, समय चरत उपमान।
चारों चतुर्गति परणति सेना छूटे छपक गुणस्थान॥
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय विभीषण दीन।
फिरे कबन्ध मही रावण की प्राण भाव सिर हीन॥
इह विधि सकल साधु घर अंतर, होय सहज संग्राम।
यह विवहार दृष्टि रामायण केवल निश्चय राम॥

तत्कालीन मुगल बादशाह और बनारसीदासजी—

बनारसीदासजी ने अपने जीवन काल में तीन मुगल बादशाहों का शासन देखा था। बादशाह अकबर के ये काफी प्रशंसक थे इसलिये उसकी मृत्यु के समाचार सुनकर बनारसीदासजी को अत्यन्त दुःख हुआ और वे बैठे २ ही गिर पड़े। जहांगिर के सामने भी इनको एक बार उपस्थित होना पड़ा था और उन्होंने "जानी जहांपनाह सलामत मेरी तसलीम है" इन शब्दों में बादशाह को सलाम किया था। शाहजहां बादशाह के दरबार में तो इन्हें प्रतिदिन उपस्थित होना पड़ता था और वहीं आकर इन्हें बादशाह के साथ शतरंज खेलनी पड़ती थी और अन्त में इन्हें बड़ी कठिनता से छुटकारा मिला था।

कवि का अन्तिम जीवन—

अर्ध कथानक में दिये ५५ वर्ष के जीवन चरित के अतिरिक्त आगे के जीवन के सम्बन्ध में कोई निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कितने वर्ष तक और जीये। लेकिन इतना अवश्य

है कि उनका अन्तिम जीवन सुख से व्यतीत हुआ होगा। इस जीवन मे उन्होने कौनसे साहित्य का निर्माण किया अथवा केवल आध्यात्मिक चर्चाओं मे ही अपना जीवन व्यतीत किया इस सम्बन्ध मे हमे कोई जानकारी नहीं मिलती।

बनारसीदासजी की रचनायें—

उपलब्ध साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बनारसीदासजी ने अपने जीवन मे नवरसपद्यावलि, नाटक समयसार, बनारसीविलास, नाममाला और अर्द्ध कथानक नामक ग्रन्थो की रचना की थी। इन सभी का सक्षिप्त परिचय पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है—

नवरसपद्यावलि—

नवरसपद्यावलि की रचना कविवर ने अपनी युवावस्था मे की थी। उस समय वे अनगराग मे मस्त थे और शृंगार रस का आस्वादन ही उनका प्रमुख ध्येय था। उसी समय उन्होंने एक हजार पद्योंवाली रचना लिखी थी। यद्यपि इसमे सभी रसों वाले पद्य थे लेकिन शृ गार रस से सम्बन्धित पद्यों की विशेषता थी। जब कवि का इश्कबाजी का नशा दूर हुआ तो उन्हें अपने द्वारा लिखी हुई नवरसपद्यावलि से भी एक दम घृणा हो गयी। और एक दिन अपनी सम्पूर्ण रचना को गोमती नदी मे बहा दिया। हिन्दी जगत् के लिये एव विशेषत हिन्दी जैन साहित्य के लिये उनका यह कार्य अच्छा नहीं रहा। यदि यह पुस्तक आज हमे उपलब्ध होती तो जैन साहित्य केवल आध्यात्मिक अथवा धार्मिक है यह कहकर के ही उसकी

उपेक्षा नहीं की जाती। बनारसीदासजी ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में निम्न लिखित पद्य लिखा है—

> पोथी एक बनाई नई मित हजार दोहा चौपई।
> तामें नवरस रचना लिखी, पै विसेस बरनन आसिखी।
> ऐसे कुकवि बनारसी भए, मिथ्या ग्रन्थ बनाए गए।

नाटक समयसार—

नाटक समयसार बनारसीदासजी की प्रमुख एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है। जैन हिन्दी साहित्य में इस रचना का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। अध्यात्म रस का यह अपूर्व ग्रन्थ है जिसको एक बार पढ़ना प्रारम्भ करने के पश्चात् कभी छोड़ने को जी नहीं चाहता। इसकी रचना में कवि ने जो अपनी अपूर्व काव्य शक्ति का परिचय दिया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। इसका प्रत्येक पद आत्मा पर अपना सीधा असर डालता है। उदाहरणार्थ दो पद्य उपस्थित किये जाते हैं—

> राम रसिक अरु राम रस कहन सुनन को दोइ।
> जब समाधि परगट भई तब दुविधा नहिं कोइ॥

× × × ×

> जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
> रमता राम न जानही सो अपराधी जीव॥

समयसार की रचना आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत भाषा में की थी। उस पर आचार्य अमृतचन्द्र ने संस्कृत टीका एवं कलशों

की रचना की। १६-१७ वीं शताब्दी मे पाडे राजमल्लजी ने हिन्दी गद्य मे बालावबोधिनी टीका लिखी और इन्हीं रचनाओं के आधार पर बनारसीदासजी द्वारा हिन्दी पद्यात्मक समयसार की रचना की गयी। यद्यपि कवि की यह केवल एक प्रकार से समय-सार पर हिन्दी टीका मात्र ही है लेकिन उसमे अपनी अपूर्व काव्य शक्ति से इतनी विशेषता लादी कि उनकी यह रचना सर्वथा मौलिक मालूम देने लगी। इसमे कवि ने शब्दों का चुनाव एव चयन इतना सुन्दर किया है कि पाठक उसमे अपने आपको खोया हुआ अनुभव करने लगता है।

पूरे समयसार में ३१० दोहा सोरठा, २४३ सवैय्या इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैय्या तेईसा, २० छप्पय, १८ कवित्त, ७ अडिल्ल एव ४ कुण्डलिया हैं। इस प्रकार सब मिला कर इसमें ७२७ छन्द हैं। यह रचना सवत् १६६३ मे आसोज शुक्ला दशमी रविवार के दिन समाप्त हुई थी।

आदरणीय नाथूरामजी प्रेमी के शब्दों मे समयसार को भाषा साहित्य के अध्यात्म की चरम सीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। आगे आने वाले जैन कवि एव लेखकों पर समयसार में वर्णित आध्यात्मिकता का जो का प्रभाव पडा है वह उल्लेखनीय है।

नाममाला——

महाकवि धनजय कृत सस्कृत नाममाला का यह हिन्दी पद्य मे भाषान्तर है। कवि ने सस्कृत पद्यों का हिन्दी अनुवाद बहुत ही

सरल एवं उत्तम रीति से किया है। हिन्दी-कोश-साहित्य में यह सर्वप्रथम उल्लेखनीय रचना है। हाईस्कूल तक के विद्यार्थियों के लिये तो शब्दों का ज्ञान बढ़ाने के लिये यह अत्यधिक उपयोगी पुस्तक है। उदाहरणार्थ विद्वान् के नामों का वर्णन करने वाले पद देखिए।

> निपुण विचक्षण विबुध बुध विद्याधर विद्वान्
>
> पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥
>
> कलावंत कोविद कुसल, सुमन दच्छ धीमंत।
>
> ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद तज्ञ गुनीजन संत ॥

अर्धकथानक—

यह कवि द्वारा लिखा हुआ स्वयं का जीवन चरित्र है। कवि ने इसमें अपने ५५ वर्ष की जीवन घटनाओं को असली रूप में उपस्थित किया है। इससे यह सिद्ध होता कि भारतीय विद्वान् भी आज से ३ वर्ष पहिले अपने जीवन इतिहास का महत्त्व समझते थे। कवि का यह आत्म-चरित ठीक आज जैसे आत्म-चरितों के समान लिखा गया है। कविने अपने जीवन की किसी भी घटना को लिखने में छिपाछिपाव नहीं की है। हिन्दी के प्राचीन आत्म-चरितों में ऐसा कोई आत्मचरित नहीं है जिसको इसकी तुलना में रखा जा सके। इसमें सब मिलाकर ६७५ चौपाई तथा दोहे हैं। रचना सुन्दर एवं सरल है। इसमें ५५ वर्षों के तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन का सुगमता से पता लगाया जा

सकता है। संवत् १६६२ मे जब बादशाह अकबर का स्वर्गवास हुआ तो राज्य मे चारों ओर अव्यवस्था एवं अशान्ति आ गयी। लोगों को चारों ओर विपत्ति ही विपत्ति दिखाई देने लगी। कवि ने इसका बडा सुन्दर चित्र खैंचा है। उसे पढिये—

घर घर दर दर दिये कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट।
हडवाई गाडी कहुँ और, नक्द माल निरभरमी ठौर।
भले वस्त्र अरु भूषण भले, ते सब गाड़े धरती तले।
घर घर सबनि विसाहे शस्त्र, लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढो कंबल अथवा खेस, नारिन पहिरे मोटे वेस।
ऊँच नीच कोउ नहिं पहिचान, धनी दरिद्री भये समान॥
चोरि धाड दीसै कहुँ नाहि, योही अपभय लोग डराहिं।

कवि की इन रचनाओं से तत्कालीन शासन व्यवस्था एवं सामाजिक स्थिति आदि का अच्छी तरह पता चलता है। ये वर्णन इतिहास निर्माण के लिए बडे उपयोगी है।

बनारसीविलास—

बनारसीदासजी ने पूर्व वर्णित रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कितनी ही स्फुट रचनायें भी लिखी थीं। इनकी कुल संख्या कितनी हैं इसके सम्बन्ध मे तो जैन शास्त्र भण्डारों की पूरी खोज होने के पश्चात ही निश्चित लिखा जा सकता है, लेकिन फिर भी वर्तमान मे इन स्फुट रचनाओं की संख्या ६२ है। बनारसीविलास के

प्रारम्भ में जो कवित्वमय विषय सूचनिका दी हुई है उसमें कवि की ८० रचनाओं के नाम दिये हुये हैं। इनके सिवाय तीन नवीन पदों की खोज महोदय साधूराम जी प्रेमी ने की है। तथा अभी कवि के ९ नवीन पद जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार की सूची बनाते हुये एक गुटके में हमें मिले हैं। संभव है कि कवि द्वारा रचित और भी रचनायें खोज करने पर प्राप्त हो सकें।

बनारसीविलास 'नाटक समयसार' अद्ध' कथानक और नाममाला के अतिरिक्त कवि की अब तक सभी उपलब्ध रचनाओं का संग्रह है। यह स्वयं कविका संग्रह किया हुआ नहीं है किन्तु कवि की मृत्यु के पश्चात् पं जगजीवन राम ने इसका संग्रह किया है। पंडितजी आगरे के रहने वाले ही थे। इनको बनारसीदासजी की रचनाओं से अत्यधिक अनुराग था, इसलिये उन्होंने उस समय तक उपलब्ध सभी रचनाओं का एक स्थान पर संग्रह कर लिया और इस संग्रह का नाम बनारसीविलास रखा।। इन्होंने इस कार्य को संवत् १७०१ में समाप्त किया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है बनारसीविलास एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें किसी एक विषय का संग्रह न होकर कवि की विविध विषयों पर रचित कविताओं का संग्रह है। सम्पूर्ण विलास को हम मुख्यतया निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१ जैन सिद्धान्त से सम्बन्धित कवितायें

२. अनूदित रचनायें

३ आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी कवितायें

४ सुभाषित, पद एवं स्फुट कवितायें

१ जैनधर्म सिद्धान्त से सम्बन्धित कवितायें:—

बनारसीदासजी जैन शास्त्रों के पारदर्शी विद्वान थे। उनका गंभीर अध्ययन था। बनारसीविलास में संग्रहीत जैन सिद्धान्त विषय से सम्बन्धित रचनाओं में जैनधर्म के गहन तत्त्वों का जो परिचय दिया गया है वह उनके जैन सिद्धान्त विषयक गंभीर ज्ञान का स्पष्ट प्रमाण है। सिद्धान्त की गहन चर्चाओं को उदाहरण देकर समझाना उन्हें अच्छी तरह आता था। सिद्धान्त के इस भाग में विलास की मुख्यतया रचनायें आती हैं—ज्ञान बावनी, मार्गणा-विधान, कर्मप्रकृतिविधान, साधु वन्दना, कर्मछत्तीसी, ध्यान बत्तीसी, पंच पद विधान, अष्ट प्रकार जिनपूजा, दश दान दश बोल, परमार्थ वचनिका, निमित्त उपादान की चिट्ठी आदि।

अनूदित रचनायें:—

इस संग्रह में कवि की तीन अनूदित रचनाएँ भी हैं। सूक्ति-मुक्तावलि, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और जिनसहस्रनाम। सूक्ति-मुक्तावलि आचार्य सोमप्रभ की संस्कृत रचना है। कवि और उनके साथी कवि कुमारपाल (कौरपाल) ने उसका सुन्दर अनुवाद किया है। कवि द्वयने इसे संवत् १६६१ वैशाख सुदी ११ को समाप्त किया था। यह समय कवि की सबसे महत्वपूर्ण रचना 'नाटक समयसार' की रचना समाप्ति से करीब २ वर्ष पूर्व का आता है।

सूक्ति मुक्तावलि के सभी पद्य सुन्दर एवं हृदयग्राही हैं। एक पद्य का नमूना देखिये—

> ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर साजि मतंगज ईंधन ढोवै।
> कंचन भाजन धूल भरै शठ मूढ़ सुधारस सों पग धोवै॥
> बाहित काग उड़ावन कारन डार महामणि मूरख रोवै।
> त्यों यह दुर्लभ देह बनारसि पाय अजान अकारथ खोवै॥

कल्याण मन्दिर स्तोत्र श्री कुमुदचन्द्राचार्य की संस्कृत रचना का हिन्दी पद्यानुवाद है। इसे परम ज्योति भी कहते हैं। बहुत से भाई प्रतिदिन इसका पाठ करते हैं। इसके प्रथम पद्य का पहिला पद परमज्योति है, इसीलिये इसे परमज्योति कहते हैं। विस्तार भय से हम इसका उदाहरण उपस्थित नहीं कर सकते। श्री जिनसेनाचार्य के संस्कृत जिनसहस्रनाम स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद कवि की तीसरी रचना है। इन तीनों ही रचनाओं के अनुवाद में कवि काफी सफल रहे हैं।

आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी कवितायें:—

बनारसीविलास की अधिकांश रचनायें किसी न किसी रूप में अध्यात्म विषय से ओतप्रोत हैं। ऐसा लगता है मानो आत्मा और परमात्मा के गुणगान में कवि ऐसे मग्न हुवे थे कि उनका प्रत्येक शब्द अध्यात्म की छाप लेकर निकलता था। स्वयं कवि आत्मा के गुणगान में तल्लीन होकर उसके गुणगान किया करते थे और "मेरे अन्तर बसिये पद पद अन्तर राम" को गुनगुनाते से

जगत को सावधान किया करते थे। आत्मा का गुणगान करते हुये उन्होंने अध्यात्मबत्तोसी मे जो निम्न पद्य लिखा है वह देखिये कितना सुन्दर है।

ज्यों सुवास फल फूल में दही दूध में घीव।
पावक काठ पाषाण मे त्यों शरीर में जीव॥
चेतन पुद्‌गल यों मिले, ज्यों तिल में खलि तेल।
प्रकट एक से देखिये, यह अनादि को खेल।
वह वाके रस में रमें वह वासों लपटाय।
चुम्बक करषै लोह को, लोह लगै तिह धाय।
कर्मचक्र की नींद सों मृषा स्वप्न की दौर
ज्ञान चक्र की दरनि में सजग भांति सब ठौर॥

अध्यात्म की उत्कर्ष सीमा का नाम रहस्यवाद है। इसलिये कवि की कुछ कवितायें जिनमे अध्यात्म अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है, रहस्यवाद की कोटि मे चली जाती हैं। हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवियों मे महाकवि कबीर का नाम उल्लेखनीय है। लेकिन यदि पाठकगण बनारसीविलास की कुछ रहस्यवादी कविताए पढेंगे तो ज्ञात होगा कि कविवर बनारसीदास भी कबीर की कोटि के ही कवि थे। डा० रामकुमार के शब्दों में रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त एवं निश्चल सम्बन्ध जोडना चाहती है और यह सम्बन्ध यहा तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।

मालम तुहूँ तन, चितवन गागरि फूटि ।
अचरा गौ फहराय, सरम गै छूटि ॥
पिउ सुधि-आवत वन में पेसिउ पेले ।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि ॥२॥
काय नगरिया भीतर चेतन, भूप ।
करम लेप लिपटा मल ज्योति स्वरूप ॥३॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर ।
चार चोर घर मूसहिं, सरवस तोर ॥४॥
चेतन भयऊ अचेतन सगरा पाय ।
थकमक में धानी देखी नहिं जाय ॥५॥
चेतन तुहि लपटाय प्रेम रस फांद ।
जस राखत घन तोपि विमल निशि चांद ॥६॥
चेतन यह भव सागर धरम जिहाज ।
तिहि चढ़ बैठा छांडि लोक की लाज ॥७॥

एक दूसरी विशेषता रहस्यवाद मे बतलाई गई है वह यह है उसमे आध्यात्मिक तत्त्व हो। ससार का नीरस वस्तुओं से बहुत दूर एक ऐसे वातावरण मे रहस्यवाद रूप ग्रहण करता है जिसमें सर्वत्र नयी नयी उमगो की सृष्टि होती है। रहस्यवादी के मानस मे प्रत्येक समय एक ऐसी स्फूर्ति रहती है जिससे वह अनन्त शक्ति की अनुभूति मे मग्न रहता है और सासारिकता से बहुत दूर किसी ऐसे स्थान मे निवास करता है जहा न तो मृत्यु का भय है, न रोगो का अस्तित्व है और न शोक का ही प्रसार है"।

अध्यात्मफाग में जीव को यह अनुभव होने लगता है कि बिना आत्मज्ञान के ईश्वर का रूप किस तरह प्राप्त हो सकता है। इसकी महिमा अगम्य एवं अनूठी है तथा जो अगोचर होने पर भी हृदय में ही समाया हुआ है। अध्यात्म ज्ञान होने पर शुभ भाव दल रूपी पल्लव लहराने लगते हैं और सहज आनन्द रूपी बसन्त का आगमन होने लगता है। सुमति कोकिल बोलने लगती है और मन रूपी भौंरा मदोन्मत्त हो उठता है। कवि के शब्दों में देखिये—

अध्यातम बिन क्यों पाइए, परम पुरुष को रूप।
अघट अंग घट मिलि रह्यो हो महिमा अगम अनूप॥
माया रजनी लघु भई हो समरस दिव शशि जीत।
मोह पंक की थिति घटी हो संशय शिशिर व्यतीत॥
शुभ दल पल्लव लहलहे हो आयो सहज बसन्त॥
सुमति कोकिला गहगही हो, मन मधुकर मयमंत॥

पहेली नामक कविता में कवि ने आत्मा की सुमति एवं कुमति नामकी दो वनिताओं का स्वरूप एवं उनका वार्तालाप के रूप में जो आत्मा एवं अच्छे बुरे कर्मों का वर्णन किया है वह उस अवस्था का वर्णन है जहाँ वह सदा जागृत रहती है और कभी सुप्त अवस्था में नहीं रहती। सुमति अपने सहेलियों के संग क्रीड़ा करती हुई जो पहेली उनके सामने उपस्थित करती है और सखियाँ जिस प्रकार उसका समाधान करती है उसको कवि के ही शब्दों में पढ़िये—

करें विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली।
कबहूँ समय पाय सखियन सों कहै पुनीत पहेली॥

मारे आंगन विरला उलझो, विना पवन झकुलाई ।
ऊंचि डाल बड़ पात सघनवा, छांह सौत के जाई ॥
बोली सखि बात मैं समुझी, कहूं अर्थ अब जो है ।
तेरे घर अंतर घट नायक, अद्भुत विरला सोहै ॥
उंची डाल चेतना उद्धत, बड़े पात गुण भारी ।
ममता बात गात नहिं परसे, छकनि छाह छतनारी ॥

इस प्रकार बनारसी विलास की अध्यात्मगीत, अध्यात्मफाग, वरवा, शिवपच्चीसी, पहेली, शान्तिजिनस्तुति आदि कविताएँ रहस्यवादी रचनायें कही जा सकती है ।

सुभाषित, पद एवं स्फुट कवितायें:—

सूक्तियों का ही नाम सुभाषित है । हिन्दी के प्राय सभी कवियों ने अपने २ काव्यों मे सुभाषितों का प्रयोग किया है । ये सुभाषित मानव को सत्प्रेरणा देते हैं । बनारसीदासजी ने भी प्राचीन कवियों के मार्ग को अपनाया एवं अपनी कविताओं को सूक्तियो से अलकृत किया । ज्ञान बावनी, मोक्षपैडी, ज्ञान पच्चीसी प्रश्नोत्तरदोहा, प्रश्नोत्तररत्नमाला आदि कविताओं मे सुभाषितों की भरमार है । इन सुभाषितों के द्वारा कवि ने ससारी मनुष्य को तरह २ के उपदेश दिये हैं । ज्ञान पच्चीसी में प्रयुक्त कुछ सुभाषित देखिये —

ज्यों औषध अजन किये तिमिर रोग मिट जाय ।
त्यो सतगुरु उपदेश तें, सशय वेग विलाय ॥

ज्यों वसिक चौपर परे, मूरख अंध करेय।
त्यों तुम भवजल में परे, बिन विवेक धर भेष ॥

× × × × × × ×

मन अज्ञान घट में प्रगट, भ्रम समुद्र मन माँहि।
मूरख मरम न जानहीं, पखीर चौगम जान ॥

सुभाषितों के अतिरिक्त बनारसीदासजी के कुछ पद भी मिलते हैं जो गागर में सागर की कहावत को चरितार्थ करने वाले हैं। सभी पद अध्यात्म रस से सने हुये हैं। तथा संसार की वास्तविक दशा को समझाने वाले हैं। कवि एक पद में जगत् के प्राणियों को सम्बोधित करता हुआ कहता है।

चेतन तू तिहुंकाल अकेला।
नदी नाव संजोग मिले ज्यों त्यों कुटुंब का मेला ॥चेतन॥

एक दूसरे पद में वे जीव को उद्बोधन देते हुये कहते हैं—

चेतन तोहि न नेक संभार।
नख सिख लौं दिढ़ बंधन बेढ़े, कौन करे निरवार ॥चेतन॥
जैसे आग पषाण काठ में लखिय न परत लगार।
मदिरापान करत मतवारो ताहि न कछू विचार ॥चेतन॥

एक पद में आप यह कहते हैं—

हम बैठे अपने मौन सौं।
दिन दश के महिमान जगत जन बोलि बिगारैं कौन सौं ॥ हम बैठे ॥

इसे पढ कर आत्मा में एक नवीन लहर दौडती है और संसार की विचित्र दशा पर अवश्य विचार उत्पन्न होता है।

इस प्रकार कवि के सभी पद जिनकी सख्या २७ है, भावपूर्ण एव सुन्दर हैं।

सुभाषित एव पदों के अतिरिक्त कवि द्वारा लिखी हुई कुछ स्फुट रचनायें भी हैं जिनका उल्लेख करना भी यहा आवश्यक है। इन रचनाओं मे हमे कवि की बहुमुखी प्रतिभा का पता लगता है। सोलह तिथि, षट्दर्शनाष्टक, चातुर्वर्ण्य, प्रस्ताविक फुटकर कविता, गोरखनाथ के वचन, वैद्य आदि के भेद आदि रचनाओं को स्फुट कविताओं मे स्थान दिया जा सकता है।

कवि के समय मे भारत में मुसलमानों का राज्य था। हिन्दू और मुसलमान आपस मे धर्म के नाम पर लडते थे। उससे कवि को घृणा थी। कवि की भावना के अनुसार दोनों धर्म भिन्न २ होते हुये भी दोनों का परमात्मा एक ही है "मेरे नैनन देखिये घट घट अन्तर राम"। इसका उदाहरण कवि के शब्दों में पढिये -

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की द्विविधा मान कर भये एक सौं दोय॥
दोउ भूले भरम में करें वचन की टेक।
राम राम हिन्दू कहें, तुर्क सलामालेक॥
इसके पुस्तग वांचिये, वे हू पढे कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे शोभा, जेब॥

जिनके हिरदय जो करें रैन दिन भारी वाम
मेरे देव देखिये घर घर अन्तर राम ॥

गोरखनाथ के सम्प्रदाय का कवि के समय में काफी प्रचार था इसीलिये गोरखनाथ के वास्तविक उपदेशों को कवि ने अपनी कविता में उपस्थित किया। सुन्दर एवं सरल शब्दों में कवि ने किस प्रकार गोरखनाथ के वचनों को उपस्थित किया है यह पठनीय है। इसकी एक चौपाई देखिये।

माया बीर कहै मैं अन्ध, माया भये नहावै बाहर।
माया त्याग होय जो ज्ञानी, सो गोरख तीनों पद्मानी ॥

हिन्दी गद्य लेखक के रूप में:—

बनारसीदासजी की प्रायः सभी रचनाएँ पद्यों अथवा छन्दों में ही है किन्तु गद्य में भी उनकी दो रचनाएँ बनारसी विलास में है। इन दोनों के नाम "परमार्थवचनिका" और "उपादान निमित्त की चिट्ठी" है। ये दोनों निबन्ध १७ वी शताब्दी के हिन्दी गद्य के नमूने हैं। ये निबन्ध ब्रजभाषा में लिखे हुए हैं लेकिन अवधि भाषा का भी उन पर पर्याप्त प्रभाव दिखलाई देता है। इसके अतिरिक्त कहीं २ ढूंढारी भाषा का भी प्रभाव इनमें दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी भाषा के अतिरिक्त कवि पञ्जाबी भाषा के भी अच्छे जानकार थे। उन्होंने जो मोखपैड़ी नामक कविता लिखी है वह पञ्जाबी भाषा की सुन्दर रचना है।

जयपुर　　　　　　　　　कस्तूरचन्द कासलीवाल
ता १५-२-५४ ई

पृष्ठ सख्या	पक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
४७	८	कल	मल
४६	१०	सूजी	सूजि
५५	१३	गिशाचर	निशाचर
५६	१	ताको	ताकी
५६	१३	सतम सुपुज	सतमस पुज
६१	८	ध्रव	ध्रुव
६५	१५	राजाको	राजको
७२	६	वनारसी	वानारसी
७२	१६	तिन मे	तामें
७६	२०	विपरात	विपरीत
७८	५	कषायक	कषायके
८०	८	मनमथको	मनमथको
८१	४	वढ	वढै
८३	३	नाभि	मृगनाभि
८८	१८	मढभावको	मूढभावको
८६	२३	ह्व	ह्वै
६२	१३	व्यालीस आठ	चालीस आठ
६२	१७	घर	धर
६२	१६	सम	सभ
६२	२२	ध्रन	ध्रुव
६४	१०	मन॰ार	मरनहार

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ।
६४	१४	त्यों त्यों त्यों	त्यों त्यों
६६	२	अनुरागी	अनुरागो
६७	४	मति	मुति
६८	६	गये	मये
१ १	२	कनु	मनु
१ २	१७	जिनंद सुमति	जिनद अभिमद सुमति
१०४	२१	सुमति	सुमुति
१०६	१६	शुद्धाम अम	द्वाम अद्दाम
१ ५	१८	सीचे	साचे
१०८	३	विसद्य	विसद
११४	७	अब	जब
११८	३	मोग सुरै	मोग न सुरै
११८	६	उरमोग	उपमोग
१२०	६	पेव	वेष
१२१	१०	अपग	सर्पग
१२२	१२	कम	कर्म
१३०	८	f हार	मिहार
१३	१४	मत	मीत
१३१	१२	शिवपथसपथक	शिवपथसाधक
१३२	१६	झोपना	~ झे पना
१३३	१६	तिर्दुधारी	मिर्दुदारी

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
२	७	सपनिका	सवपनिका
२	१०	बिरपी	बिरपी
६	४	अकुत	अकुन
८	१०	मृ	मृद
११	३	मेपालीन	मेपालील
११	८	विमाम्मो	विम्ममी
१३	५	बजमम्बरी	बजमम्परी
१५	११	कोपद्वानल	कापद्वानल
१७	११	मेपस्नरो	मेपस्तरो
२	६	कमपवतदमम	कापवतदमन
२१	८	गुणिमग	गुणिमग
३३	१६	कुरग	कुरंग
३४	५	बिसरे	बिस्वरै
३५	१७	पम	पन
३६	१२	कुप	कुल
४०	६	जनु	जनु
४४	१	सम्पाप	सतान
४६	५	ऐसो	ऐसी

पृष्ठ सख्या	पक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
४७	८	कल	मल
४६	१०	सूजी	सूजि
५५	१३	गिशाचर	निशाचर
५६	१	ताको	ताकी
५६	१३	सतम सुपुज	सतमस पुज
६१	८	ध्रव	ध्रुव
६५	१५	राजाको	राजको
७२	६	वनारसी	वानारसी
७२	१६	तिन मे	तामें
७६	२०	विपरात	विपरीत
७८	५	कषायक	कपायके
८०	८	मनमथको	मनमथको
८१	४	बढ	बढै
८३	३	नाभि	मृगनाभि
८८	१८	मढभावको	मूढभावको
८६	२३	ह्व	ह्वै
६२	१३	व्यालीस आठ	चालीस आठ
६२	१७	घर	धर
६२	१६	सम	सभ
६२	२२	ध्रव	ध्रुव
६४	१०	मनह्वार	[illegible]

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१३४	७	रुंकसा	रकमा
१३४	१८	हस्यै तन	हस्यैतन
१३४	२१	परं रे	परंरें
१३५	१	पापी	पानी
१३५	४	दुद्दु वादी	दुद्दुवादी
१३५	१६	तु माटा	तुसाडा
१४२	६	चोरा	घोरी
१४२	१६	धर्म घ्या	धर्मध्यान
१४३	६	निपरीत	निपरति
१४४	१२	थातैं	यातैं
१४४	१६	उयों	ज्यों
१४७	१०	परिगृह	परिग्रह
१४६	६	शुल्कध्यान	शुक्लध्यान
१५०	१६	चढ ड लै	चढ डोलै
१५२	१८	पावनके	पवनके
१५३	८	वदवान	वादवान
१५४	७	मयमत	मयमत
१५५	७	विराम	विराग
१५८	८	भग	भग
१५८	१८	आप न	आपन
१५६	२	दुरमात	दुरमति

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१६३	८	रंच	रंच
१६१	२०	सम्यग्मग्न	सम्मग्न
१६४	१७	पडिता	पंडित
१७०	१६	मर्जवित	मर्जवित
१७२	१५	पुरुषमजन	पुरुषमंजन
१७६	४	है	है
१७६	१२	पुहुप	पुहुप
१७६	१८	पुष्पसार	पुष्पसार
१७७	३	जिमपूजक	जिनपूजक
१७७	२	इसके	इनके
१७९	१६ वी पंक्ति 'जिमधर्म' शीर्षक के आगे नीचे लिखा दोहा और पढ़ें *		
१७९	१७ वी पंक्ति (दोहा नं० ६) का शीर्षक 'आगम पढ़ें		
१८१	७	चपक	चंपक
१८१	११	कुमान	कुलीन
१८२	६	लोकन	लोचन
१८२	९	चिद्रप	चिद्रूप
१८२	१	जाग	जोग
१८३	१	दम	दम

* जो पर तजि आपापनैं जहाँ सुविधि शुद्ध धर्म
अरारम रूप प्रयोग पद सो कहीए जिनधर्म (१६) (क.)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध मुद्रित	शुद्ध पाठ
१८३	१६	श्रद्वा	श्रद्धा
१८३	२०	यम	दम
१८३	२१	वारज	वीरज
१८४	१	रतु	रितु
१८४	३	ध्रव	ध्रुव
१८४	१६	साय	सोय
१८५	१०	खोय	सोय
१९१	४	कोर्त्ति	कीर्त्ति
१९८	४	परदाष	परदोप
१९९	१	परेबा वरे	परे बावरे
१९९	७	विषाद	विषाद
२०३	६	बाचा	बावा
२२३	१५	पटपेखन	पटपेखन

श्रीमहावीरस्वामिने नमः

बनारसीविलास

विषय सूचनिका

सवैया इकतीसा

प्रथम सहसनाम सिन्दूरप्रकरधाम, बावनीसवैया वेद निर्णय पचासिका। त्रेसठशलाका मागना करमकी प्रकृति-कल्याणमन्दिर साधुवन्दन सुभाषिका॥ पैड़ी कर्म की छतीसी पीछे ध्यानकी बतीसी, अध्यातम बतीसी पचीसी ग्यान ×पासिका। शिवकी पचीसी भवसिन्धुकी चतुरदशी, अध्यात्मफाग तिथिषोडसनिवा+सिका॥ १॥

तेरहकाठिया मेरे मनका सुप्यारागीत, पंचपद विधान सुमति देवीशत है। शारदा बड़ाई नवदुरगा निर्णय नाम,

× वासिका पाठान्तर है। + निवासिका पाठान्तर है।

श्रीमान् कनैयालालजी जौहरीमलजी गोलेछाकी ओर से

[२६] नौरतन कवित्त सु [२७] पूजा [२८] दानदत्त है ॥ [२९] दशबोल [३०] पहेली [३१] सुप्रश्न [३२] प्रश्नोत्तरमाला, [३३] अवस्था [३४] मतान्तर [३५] दोहरा बरणत है । [३६] अजि-तके छन्द [३७] शान्तिनाथछन्द सेनानव, [३८] नाटककवित्त [३९] चार, वानी [४०] मिथ्यामत है ॥ २ ॥

[४१] फुटकरसवैया बनाये वच [४२] गोरखके, [४३] वेद आदिभेद [४४] परमारथ वचनिका । [४५] उपादान निमित्तकी चौटी [४६] तिनहीके दोहे, [४७] भैरों [४८] रामकली [४९] औ विलावल सचनिका ॥ [५०] आशावरी [५१] बरवै सु [५२] धनाश्री [५३] सारग [५४] गौरी, [५५] काफी औ [५६] हिंडोलना [५७] मलारकी मचनिका । भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदैमें, विरचौ बनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

ये वरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त ।
इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥
महिमा जिनके वचनकी, कहै [illegible] कोय ।
ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, [illegible] होय ॥२॥

अथ जिनसहस्रनाम ।

दोहा

परमदेव परनामकर, गुरुको करहु प्रणाम ।
बुधिबल बरनौं ब्रह्मके सहसअठोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहौं कहौं सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत त्रिविध शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपई १५ मात्रा

प्रथमोंकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ।
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द । गिरातीत[1] गुणमूल अनिन्द ॥ १ ॥
गुणी गुण्य गुणभाजन बली । जगतदिवाकर कौतूहली ।
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अकल अमूरति अरस अखेद । अचल अबाधित अमर अवेद ।
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनँदकन्द ॥ ३ ॥
प्राणनाथ पावन अमलान । शीलसदन निर्मल परमान ।
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाध । अविनाशी अस्पर्शो अमान ।
अमल अनादि अदीन अक्षोभ । अनातङ्क अज अगम अलोभ ॥ ५ ॥

---

१ वाणी का अविषय

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अघट अनूप ।
अपट अरूपी अभय अमार। अनुभवमंडन अनघ अपार ॥ ६ ॥
विपुलपूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ।
नभवत पुंडरीकवत[१] हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस[२] ॥ ७ ॥
निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ।
सुखधर्मो सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा

अम्बरवत आकाशवत, क्रियारूप करतार ।
केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १० ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥ १ ॥

चौपई

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ।
अप्रमाण अघहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण ॥ १३ ॥
कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारूढ असहाय ।
सुगम अनन्तराम गुणग्राम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १ १४ ॥
लोकविकाशी लक्षणवन्त । परमदेव परब्रह्म अनन्त ।
दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम द्रिगपाल ॥ १५ ॥
सत्यारथ सुखदायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ।
ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान । नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

---

१ कमल के समान २ पाप नाशक

अकल अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत ॥
मंगलकारी मंगलमूल । विद्यासागर विगतदुकूल[1] ॥ १७ ॥
नित्यानन्द विमल निरुपाम । धर्मधुरंधर धर्मनिधान ।
ध्यानी धामवान धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ।
तपसागर तपपुञ्ज अछेद । अघमलभंजन अमृत अभेद ॥ १९ ॥
गुणआवास गुणमय गुणधाम । स्वपरप्रकाशक रमताराम ।
अलख पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्राह गुणपाल ॥२० ॥

दोहा

बहुरूपी कालवहरन, कामविदारन वीर ।
धाराबाही वीतमल वेद धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयशतक ॥ २ ॥

पद्धरिछन्द ।

चिन्तामणि चिन्मय परम नम । परिणामी चेतन परमछेम ।
चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूडामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥२२॥
चारित्रधाम चित् चमत्कार । परमातम रूपी चित्कार ।
निर्बाधक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥२३॥
निरभोग निराश्रव निराहार । नगनरूपनिवारी निर्विकार ।
आतमा अनघर अमरथान । अचर अचल अक्षय अनाद ॥ २४ ॥

---

१ वस्त्र रहित २ पहाड़

आगत अनुकम्पामय अडोल। अशरीरी अनुभूती अलोल।
विश्वम्भर विस्मय विश्वटेक। व्रजभूषण व्रजनायक विवेक ॥ २५ ॥
छलभजन छायक छीनमोह। मेधापति अकलेधर अमोह।
अद्रोह अनिग्रह अग अरक। अद्भुतनिधि करुणापति अवक ॥२६॥
सुखराशि दयानिधि शीलपुंज। करुणासमुद्र करुणाप्रपुंज।
वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ। निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ॥२७॥
जिननायक जिनकुंजर जिनेश। गुणपुंज गुणाकर मंगलेश।
क्षेमंकर अपद अनन्तपानि। सुखपुंजशील कुलशील खानि ॥२८॥
करुणारसभोगी भवकुठार। कृपिवत कृशानु वारन तुसार।
कैतवरिपु अकल कलानिधान। धिषणाधिप ध्याता ध्यानवान ॥२९॥

दोहा

छपाकरोपम छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ।
अतंरिक्षवत गगनवत, हुत कर्मा कृतयज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पद्धरिछन्द।

लोकांत लोकप्रभु लुप्तमुद्र। सवर सुखधारी सुखसमुद्र।
शिवरसी गूढ़रूपी गरिष्ठ। वलरूप वोधदायक वरिष्ठ ॥ -
विद्यापति धीधव विगतवाम। धीवंत विनायक वीतकाम। १
वीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल। लीलाविलास जिन शारदूल ॥ २
परमारथ परमातम पुनीत। त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत। ३
तपराशि तेजकुल तपनिधान। उपयोगी उग्र उद्यो...

१ कषाय रूपी अग्नि को नष्ट करने के लिए वर्फ के समा...

भूतिवान भूतेश भारक्षम भर्म उच्छेदक।
सिंहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥
शिवकारण शिवकरन भविक बधव भवनाशन।
नीरिश नि समर सिद्धिशासन शिवआसन ॥
महाकाज महाराज मारजित मारविहडन।
गुणमय द्रव्यस्वरूप दशाधर दारिदखडन ॥ ४२ ॥
जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर।
जगतबधु जिनराज शीलसंचयसुखसागर ॥
महाशूर सुखसदन तरनतारन तमनाशन।
अगनितनाम अनतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥
वारिजवत जलजवत पद्म उप्पम पकजवत।
महाराम महधाम महायशवत महासत ॥
निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि।
प्रशमरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द।

सुरसभोगी २ शील समुदायकी चाल—
शुभकारनशील इह सील राशि सकट निवारन
त्रिगुणातम तपतिहर परमहसपर पचवारन ॥
परम पदारथ परमपथ, दुखभजन दुरलक्ष।
तोपी सुखपोपी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामत्र नाम पचम शतक ॥ ५ ॥

रोडक छन्द ।

परमप्रबोध परोक्षरूप परमातमनिकन्दन ।
परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवंदन ॥
जिन जिनपति जिनसिंह जगतमणि बुधकुलनायक ।
कल्पातीत कृतार्थरूप, दमवन दमदायक ॥ ४६ ॥
अपनिकारसधर्मरूप, गुणराशि रिपुंजय ।
करुणासदन समाधिरूप शिवकर शत्रुंजय ॥
परावर्तरूपी अक्षम, आतममनोमय ।
मिथ्यापीन निःशल्य, महामेरुक अमोक्षमय ॥ ४७ ॥
अपुनर्भव जिनदेव सर्वतोभद्र अखिलसार ।
धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥
त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलाकरपादप ।
सुखमन्दिर सुखमय अनन्तबोधन अविधापद ॥ ४८ ॥
लोकप्रमाणसी त्रिभुवनसाखी करुणाकर ।
गुणधामाश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥
धीरज धीरी धीतकर्म कर्मंग धर्मेश्वर ।
रत्नाकर गुणरत्नराशि रत्नद रामेश्वर ॥ ४९ ॥
निरक्षिनी शिवसिखापार बहुदुःख अनाशन ।
गुणकानन[१] गुणरसिक रूपगुणमणिपद्मासन ॥
निरंकुश निराधाररूप निजपर परकाशक ।
निराकार निरबंध बंधहर बंधविनाशक ॥ ५० ॥

---

१ गुण रूपी वृक्षों के वन ।

मानोपम सरवा भवमासी । हग्विदारण बाधविलासी ।
कौतुकनिधि कुशली कल्याणी । गुरू गुसाँई गुणमय ज्ञानी ॥५९॥
निरातंक निरवैर निरासी । मेधावीव आत्मप्रकाशी ।
महाविचित्र महारसभोगी । भ्रमभंजन भगवान अरोगी ॥६०॥
कलमषभंजन केवलदाता । भरोद्धरन धरापति धाता ।
मज्ञाधिपति परम चारित्री । परमतत्त्ववित परममित्री ॥६१॥
संगातीत संगपरिहारी । एक अनेक अनन्ताचारी ।
उपमारूपी ऊरधगामी । विश्वरूप विजयी विश्रामी ॥६२॥

दोहा

धर्मविनायक धर्मभुज धर्मरूप धर्मज्ञ ।
रसगर्भे रागमरसज्ञ रसनातीत रसज्ञ ॥ ६३ ॥
इति केवलज्ञानी नामक सप्तम शतक ॥ ७ ॥

रूप चौपाई ।

परमप्रदीप परमपददानी । परमप्रतीति परमविज्ञानी ।
परमज्योति अघहरन अगेही । अक्रिय अलंख अनंग अदेही ॥६४॥
अतुल अमेय अरेष अमेषी । अमन अनाथ अवेल अमेषी ।
अकुल अगुरु अकाय अकर्मा । गुणाधर गुणदायक गुणमर्मा ॥६५॥
निस्तरंग निस्सीम नीरागी । सुखासन सुवचा सौभागी ।
हतकैतवी मुक्तसंतापी । सहजस्वरूपी सबविधि व्यापी ॥६६॥

१ पाठ भेद-धाराधरम । २ पाठ भेद-परमरसज्ञानी ।

महाकौतुकी महद विज्ञानी । कपटविदारन करुणादानी ।
परदारन परमारथकारी । परमपौरुषी पापप्रहारी ॥ ६७ ॥
केवलब्रह्म[१] धरमधनधारी । हतविभाव हतदोष हतारी ।
भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
शंभु सर्वदर्शी शिवपथी । निराबाध निःसंग निग्रन्थी ।
यती यत्रदाहक हितकारी । महामोहवारन बलधारी ॥६९॥
चित्री चित्रगुप्त चिदवेदी । श्रीकारी संसारउछेदी ।
चितसन्तानी चेतनवशी । परमाचारी भरमविध्वंसी ॥७० ॥
सदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेशी अनन्तपरिणामी ।
वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥७१॥
चारु चिदङ्कित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जीती ।
शुभकारण शुभकर शुभमंत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जन्त्री ॥७२॥

दोहा

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।
मुक्ति मुकुन्द महेश हर[२], महदानंद मुनीश ॥७३॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥८॥

मंगलकमला की ढाल ।

दुरित दलन सुखकन्द ए । हत भीत अतीत अमन्द ए ।
शीलशरणहत कोप ए । अनभंग अनंग अलोप ए ॥ ७४ ॥

---

१ परम—पाठ भेद है । २ इन (सूर्य) यह भी पाठ है ।

हंसगरभ हतमोह प। गुणसंपन्न गुणसन्दोह प।
सुखसमाज सुख गेह प। हतसंकट विगत सनेह प॥ ७५॥
योगरूप हतशोक प। जगजीत जग जगतालोक प।
धृतसुधर्म कृतहोम प। सतसूर अपूरव सोम प॥ ७६॥
हिमवन्त हतसंताप प। भवकम्प पी विगतालाप प।
पुण्यस्वरूपी पूत प। सुरसिंधु स्वयं संभूत प॥ ७७॥
समयसार श्रुतिपार प। अविकल्प अकल्पाधार प।
शांतिकरन कुशलंधि प। अमरूप मनोहरकान्ति प॥ ७८॥
सिंहासन आरूढ प। असमंजसहरन अमूढ प।
लोकजयी हतलोभ प। कृतकर्मविनाश धृतशोभ प॥ ७९॥
सत्य वच अनन्तयोग प। अनुकम्प अयोग असोग प।
सुविधिविम्ब सुमतीश प। श्रीमान् मनीषाधीश प॥ ८०॥
विदित विगत अवगाह प। कृतभरत सम अथाह प।
वर्द्ध मान गुणमान प। करुणाधरदीक्षाविधान प॥ ८१॥
अकर्मनिधान अगाध प। हतकलिल निहतअपराध प।
साधिरूप[1] साधक धनी प। महिमागुणमेरु महामनी[2] प॥८२॥
स्वपरविवेक प्रवाम प। त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान प।
जगजीत जगताधार प। करुणागृह विपतिविदार प॥ ८३॥
जगसाखी वरवीर प। गुणगेह महागंभीर प।
अभिनंदन अभिराम प। परमेष्ठी परमोद्दाम प॥ ८४॥

---

१ स्वरूप रूप धारी। २ पाठ भेद-महामुनी। ३ पाठ भेद परमेशं।

दोहा

सुगुण विभूतीविभवी, सेमुषीश[1] संबुद्ध ।
सकलविश्वकर्माश्रभव, विश्वविलोचन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक ॥ ९ ॥

मंगल कमलाकंद की ढाल

शिवनायक शिव एव ए । प्रवलेश प्रजापति देव ए ।
मुदित महोदय मूल ए । अनुकम्पा सिंधु अकूल ए ॥ ८६ ॥
नीरोपम गतपंक ए । नीरीहत निर्गतशंक ए ।
नित्य निरामय भौन ए । नीरन्ध्र निराकुल गौन ए ॥ ८७ ॥
परमधर्मरथसारथी ए । वृत केवल रूपकृतारथी ए ।
परम वित्त[2] भंडार ए । संवरमय संयमधार ए ॥ ८८ ॥
शुभी सरवगत संत ए । शुद्धोधन शुद्ध सिद्धंत ए ।
नैयायक नय जान ए । अविगत अनंत अभिधान ए ॥ ८९ ॥
कर्मनिर्जरामूल ए । अघभंजन सुखद अमूल ए ।
अद्भुत रूप अशेष ए । अवगमनिधि अवगमभेष ए ॥ ९० ॥
बहुगुणरत्नकरंड ए । ब्रह्मांडरमणब्रह्मंड ए ।
वरद वधु भरतार ए । महदंग महानेतार ए ॥ ९१ ॥
गतप्रमाद गतपास ए । निरनाथ निराथिय निरास ए ।

---

१ बुद्धि के ईश्वर । २ पाठ भेद—नित्य ।

महायंत्र महात्यागि प । महादम महागमिगामि प ॥ ९२ ॥
महानाथ महज्ञान प । महाध्यान महानिधान प ।
गुणागार गुणधाम प । गुणमरु गमीरविलास प ॥ ९३ ॥
करुणामूल निरंग प । महाशासन महारसंग प ।
सारवस्तु हरिवन्द्य प । महदीश्वर महदादेश प ॥ ९४ ॥
महाविभु महाविधिवंत प । धरणीधर धरणीकंत प ।
कृपावंत करुणाधाम प । कारणमय करनविराम प ॥ ९५ ॥
मायाबलगयन्द प । मन्मादनिर्मितद्रवन्द प ।
कुमति निकन्दन चाव प । दुस्साबमंजनमृगराज प ॥ ९६ ॥
परमतत्त्वमन संपदा प । त्रिगुणी त्रिकालदर्शीसदा प ।
कोपदवानलनीर प । भवनीरदहरणसमीर प ॥ ९७ ॥
भवसिंधुतारउधार प । संशयमृगासनिसिधार प ।
लोभशिखरसमिर्धन प । विषयानिशिहरणप्रभान प ॥ ९८ ॥

दोहा

संवरधारी शिवरमण, धीरजमि धीरजनिवास ।
महादेव समरसमयन सुखमय सुखमनुदास ॥ ९९ ॥
इति श्रीऋषभनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा

इति श्रीमदभयदानी नाम मालिका मूल ।
पठित नगर पुनर्दरको धर्मसमारकी भूप ॥ १०० ॥

---

१ वरन—प्रतिप ।

परमपिंड ब्रह्माडमें, लोकशिखर निवसत ।
निरखि नृत्य नानारसी, बानारसी नमत ॥ १०१ ॥
महिमा ब्रह्मविलासकी, मोपर कही न जाय ।
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
सवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
करनक्षत्र तिथि पचमी, प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥

इति भाषाजिनसहस्रनाम ।

ॐ

श्री सोमप्रभाचार्य विरचिता

सूक्त मुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली

(सिंदूरप्रकर)

शार्दूलविक्रीडित ।

सिन्दूरप्रकरस्तपः करिशिरः क्रोडे कषायाटवी
दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।
मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव
प्रोल्लास क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभो पातु वः ॥१॥

छप्पय ।

शोभित तपगजराज सीस सिन्दूर पूरछवि ।
बोधदिवस आरंभ करन कारण उद्योत रवि ॥
मंगल तरु पल्लव कषाय कांतार हुतासन ।
बहुगुणरत्ननिधान मुक्तिकमलाकमलासन ॥
इहिविधि अनेक उपमा सहित अरुण चरण[1] संताप हर ।
जिनरायपाय[2] नखज्योति भर नमत बनारसि जोर कर ॥

---

१ पाठभेद–चरण । २ पाठभेद–जिनराय पाय ।

शार्दूलविक्रीडित।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचा विचारोद्यताः
सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।
किं वाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथनं न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधकान्तवेसरीछन्द ।

जैसे कमल सरोवर वासै । परिमल तासु पवन परकासै ।
त्यों कवि भाषहिं अक्षर जोर । सत सुजस प्रगटहिं चहुँओर ॥[१]
जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा होय ।
जो कवि अक्षर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

धर्माधिकार

इन्द्रवज्रा

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधकान्तवेसरीछन्द ।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहिं । धर्म विशेष जान आराधहिं ।
धरम प्रधान कहैं सब कोय । अर्थ काम धर्महिंतैं होय ॥
धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्मपंथसाधनविना, नर तिर्यंच समान ॥ ३ ॥

१ पाठभेद—जगमहिजश ।

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥

कवित्त मात्रिक (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष कोई धन कारन हींडत दीपदीप चढ़ यान ।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि डारत जलधि जान पाषान ॥
तैसे भ्रमत भ्रमत भवसागर पावत नर शरीर परधान ।
धर्मजतन नहिं करत 'बनारसि' खोवत बादि जनम अज्ञान ॥४॥

मन्दाक्रान्ता

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्यैन्धभारम् ॥
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थं
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

मत्तगयन्द (सवैया)

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर, साजि मतंगज ईंधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ़ सुधारससों पग धोवै ॥
बाहित काग उड़ावन कारन, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै ॥५॥

शार्दूलविक्रीडित ।

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं,
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ।

विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं,
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥

कवित्त मात्रिक (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर[1] उखारि कल्पतरु, बोवत मूढ़ कनकको खेत।
ज्यों गजराज बेच गिरिवर सम, क्रूर कुबुद्धि मोल खर[2] लेत ॥
जैसे छाड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखण्डमन देत।
तैसे धर्म विसारि 'बनारसि' धावत अधम विषयसुखहेत ॥६॥

शिखरिणी।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः।
ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥ ७ ॥

सोरठा।

ज्यों जल बूड़त कोय, तज बाहन पाहन गहै।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छाड़ि सेवत विषय ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडित।

भक्तिं तीर्थकरे गुरौ जिनमते संघे च हिंसानृत-
स्तेयाब्रह्मपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम्।

---

१ धतूरा। २ गधा।

सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां
वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः ॥८॥

छप्पय ।

जिन पूजहु गुरु नमहु जैनमत बैन बखानहु ।
संघ भक्ति आदरहु, जीव हिंसा न[1] विधानहु ॥
झूठ अदत्त कुशील त्याग परिगह परमानहु ।
क्रोध मान छल लोभ जीत, [2]सज्जनविधि ठानहु ॥
गुणिसंग करहु इन्द्रिय दमहु देहु दान तप भावजुत ।
गहि मन विराग इहिविधि चहहु जो जगमें जीवनमुकत ॥ ८ ॥

पूजा अधिकार ।

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं ।
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम् ।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥९॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

लोपै दुरित हरै दुख संकट; आपै रोग रहित नितदेह ।
पुण्य भँडार भरै जश प्रगटै मुकति पंथसौं करै सनेह ॥

१ पाठभेद–मधि आनहु । २ पाठभेद–सज्जनता ।

रचै सुहाग देय शोभा जग, परभव पँहुचावै सुरगेह।
कुगति बंध दलमलहि 'बनारसि', वीतराग पूजा फल येह ॥९॥

स्वर्गस्तस्य गृहाङ्गणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुभा
सौभाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि।
संसारः सुतरः शिवं करतलक्रोडे लुठत्यञ्जसा
यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः ॥१०॥

देवलोक ताको घर आँगन, राजरिद्ध सेवैं तसु पाय।
ताके तन सौभाग आदि गुन, केलि विलास करैं नित आय॥
सोनर तुरत तरैं भवसागर, निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य भाव विधिसहित 'बनारसि', जो जिनवर पूजै मन लाय।१०।

शिखरिणी।

कदाचिन्नातङ्कः कुपित इव पश्यत्यभिमुखं
विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम्।
विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगतिः सङ्गमुदयो
न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चां रचयतः ॥११॥

ज्यौं नर रहै रिसाय कोपकर, त्यौं चिन्ताभय विमुख बखान।
ज्यौं कायर शकै रिपु देखत त्यौं दारिद भज्जै भय मान॥
ज्यौं कुनारि परिहरै खंडपति, त्यौं दुर्गति छंडै पहिचान।
हितु ज्यौं विभौ तजै नहिं सगत, सो सब जिनपूजाफल जान ॥११॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते
यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते ।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः ॥

जो जिनेंद्र पूजै फूलनिसौं सुरनैनन पूजा तसु होय ।
वंदै भावसहित जो जिनवर वंदनीक त्रिभुवनमैं सोय ॥
जो जिन सुजस करै जन ताकी महिमा इन्द्र करै सुरराय ।
जो जिन ध्यान करहि 'बनारसि' ध्यावहिं मुनि ताके गुन गाय ॥१९॥

गुरु अधिकार ।

वंशस्थविलम् ।

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः ।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम् ॥ २० ॥

आभानक छन्द ।

पापपंथ परिहरहिं ; धरहिं शुभपंथ पग ।
पर उपगार निमित्त ; बखानहिं मोखमग ॥
सदा अवंछित चित्त ; जु तारन तरन जग ।
ऐसे गुरुको सेवत ; भागहिं करम ठग ॥ २१ ॥

मालिनी ।

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् ॥१४॥

गीता छन्द ।

मिथ्यात दलन सिद्धात साधक, मुकतिमारग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुण्य पाप बखानिये ॥
ससारसागरतरनतारन, गुरु जहाज विशेखिये ।
जगमाहि गुरुसम कह 'बनारसि', और कोउ न देखिये ॥ १४ ॥

शिखरणी ।

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनुनिवहः
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।
निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥१५॥

मत्तगयन्द ।

मात पिता सुत बन्धु सखीजन, मीत हितू सुखकारन पीके ।
सेवक राज मतगज बाजि, महादल साजि रथी रथनीके ॥
दुर्गति जाय दुखी बिललाय, परै सिर आय अकेलहि जीके ।
पथ कुपथ गुरू समझावत, और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

किं ध्यानेन भवस्व शेषविषयत्यागस्तपोभिः कृत
पूर्णं भावनयात्मनिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमे ।
किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरो' शासन
सर्वे येन विना विनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः

वस्तु छन्द ।

ध्यान धारन ध्यान धारन, विषै सुख त्याग ।
करुनारस आदरन भू मि सैन इन्द्री निरोधन ॥
व्रत संजम दान तप, भगति भाव सिद्धांत साधन ॥
ए सब काम न आवहीं ज्यौं बिन नायक सैन ॥
शिवसुख हेतु 'बनारसी' कर प्रतीत गुरुवैन ॥ १६ ॥

जिनमताधिकार ।

शिखरिणी ।

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेनं न कुगुरु
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम् ।
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नापि निपुणम्
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥१७॥

कुण्डलिया छन्द ।

देव अदेव न हि नहीं लखै सुगुरु कुगुरु नहिं सूझ ।
धर्म अधर्म गनै नहीं कर्म अकर्म न बूझ ॥

पदुपमाल कर्हि नाग; रतन पत्थर सम सुझर्हि ।
चंद्रकिरण आतप स्वरूप इमि भंसि सु मुझर्हि ॥
करुणानिधान अमम्यानगुम; मगट 'बनारसि' जैनमत ।
परमत समान जो मनधरत सो अजान मूरख अपत ॥ १९ ॥

धर्म ध्वागरयस्यर्च विपदपस्युत्थाप्यमुत्सर्च
मिन्ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मथ्नाति मिथ्यामतिम् ।
वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य
त्तस्तैर्न मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ॥२०॥

मरहट्टा छन्द ।

शुभ धर्म विकासै, पापविनासै कुपथउथापनहार ।
मिथ्यामतखंडै कुनयविहंडै मंडै दया अपार ॥
तृष्णामदमारै राग विडारै यह जिनआगमसार ।
जो पूजै ध्यावै पढै पढावै सो जगमाहिं उदार ॥२०॥

संघ अधिकार ।

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव
स्वर्गः कल्पमहीरुहामिव सरः पङ्केरुहाणामिव ।
पाथोधिः पयसामिवेन्दुमहसां स्थानं गुणानामसा-
वित्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ॥

२१ मात्रा सवैया छन्द ।

जैसें सवर्मदल तारागण रोहनगिरिवर रतनकी खान ।
ज्यौं सुरलोक भूरि कलपद्रुम; ज्यौं सरवर अंबुज बन जान ॥

ज्यों समुद्र पूरन जलमंडित, ज्यों शशिछविसमूह सुखदान।
तैसें संघ सकल गुणमन्दिर, सेवहु भावभगति मन आन ॥२१॥

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः।
यस्मै स्वर्गपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते
स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यताम् ॥२२॥

जे संसार भोग आशा तज, ठानत मुकति पन्थकी दौर।
जाकी सेव करत सुख उपजत, जिन समान उत्तम नहिं और ॥
इन्द्रादिक जाके पद बंदत, जो जंगम तीरथ शुचि ठौर।
जामें नित निवास गुन संपति, सो श्री संघ जगत शिरमौर ॥२२॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात्कीर्तिस्तमालिङ्गति
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया।
स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते
यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥ २३ ॥

ताको आय मिलै सुखसंपति, कीरति रहै तिहू जग छाय।
जिनसों प्रीत बढ़ै ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय।
'बानारसि' गुनरास संघकी, जो नर भगति करै मनलाय ॥ २३ ॥

१ पाठभेद—मंडन

यत्राद्याः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृषेः सस्यवच्
चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिकं गीयते ।
शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः
संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम् ॥

जाके भगति मुकतिपदपावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ।
ज्यों कृषि करत धानफल उपजत सहज पयार घास भुस होय ॥
जाके गुन जस जंपनकारन सुरगुरु थकित होत मतखोय ।
सो श्रीसंघ पुनीत 'बनारसि' दुरित हरन बिचरत महि सोय ॥ ४ ॥

अहिंसा अधिकार ।

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजःसंहारवात्या भवो-
दन्वन्नौर्व्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम् ।
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला
सत्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

सवैया ३१ ।

सुकृतकी खान इन्द्र पुरीकी निसैनी जान
पापरजखंडनको पौनरासि पेखिये ।
भवदुखपावकबुझायवेको मेघमाला
कमला मिलायवेको दूती ज्यों विसेखिये ॥
सुगति वधूसौं प्रीत पालवेको आलीसम
कुगति किवार[1] दिढ़ आगलसी देखिये ॥

१ पाठभेद—कुगति के द्वार दिढ़ ।

ऐसी दया कीजै चित, तिहूँलोकप्राणीहित,
और करतूत काहू, लेखेमें न लेखिये ॥ २५ ॥

शिखरिणी ।

यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥२६॥

आभानक छन्द ।

जो पच्छिम रवि उगै, तिरै पाषाण जल ।
जौ उलटै भुवि लोक, होय शीतल अनल ॥
जो सुमेरु डिगमगै, सिद्ध कहं लगै मल ।
तब हू हिंसा करत, न उपजत पुण्यफल ॥ २६ ॥

मालिनी ।

स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता-
दमृतमुरगवक्त्रात्साधुवादं विवादात् ।
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा-
दभिलषति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

सवैया ३१ ।

अगनिमैं जैसे अरविंद न विलोकियत,
सूर अँथवत जैसे वासर न मानिये ।

सांपके बदन जैसे अमृत न उपजत
कालकूट खाये जैसे जीवन न जानिये ॥
कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसे
बाढ़तरसांस रोग नाश न बखानिये ।
प्राणी बधमांहि तैसें; धर्म की निशानी नाहिं,
याहीतें बनारसी विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुच्चैस्तरम् ।
आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरं
संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रान्तरम् ॥२८॥

३१ मात्रा सवैया छन्द

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम; गुण संपति आनंद निवास ।
उन्नत विभव सुगम भवसागर तीन भवन महिमा परकास ॥
सुबलवंत अनंतरूप छवि, रोगरहित नित भोगविलास ॥
जिनके चितदया तिनकेसब, सब सुख होहिं बनारसिदास ॥२८॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं देवैः कृताराधनं
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम् ।
श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् ॥२९॥

षटपद ।

गुणनिवास विश्राम वास, दारिद्दुखखंडन ।
देवअराधन योग, मुकतिमारग मुखमंडन ॥
सुयशकेलि आराम, धाम सज्जन मनरंजन ।
नागवाघवशकरन, नीर पावक भयभंजन ॥
महिमा निधान संपतिसदन, मंगल मीत पुनीत मग ।
सुखरासि 'बनारसिदास' भन, सत्यवचन जयवंत जग ॥२६॥

शिखरिणी ।

यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनं
निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ।
न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा
कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥ ३० ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जो भस्मत करै निज कीरति, ज्यों वनअग्नि दहै वन सोय ।
जाके संग अनेक दुख उपजत, बढ़ैं वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
जामैं धरम कथा नहिं सुनियत, ज्यों रवि बीच छांहिं नहिं होय ।
सो मिथ्यात्व वचन बनारसि, गहत न ताहि विचक्षण कोय ॥३०॥

वंशस्थविलम् ।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासद्म समृद्धिवारणम् ।
विपन्निदानं परवञ्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम् ॥३१

रोडक छन्द ।

कुमति कुरीति निवारन प्रीति परतीति विथारन ।
रिद्धिसिद्धिसुखकरन विपति दारिद दुख हरन ॥
परवंचन अपहति सहज अपराध कुलंघन ।
सो यह मिथ्यावचन नाहिं आदरत विचच्छन ॥ २१ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किङ्कराः
कान्तारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगारिर्मृगः ।
पातालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विषं
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्याञ्चितं वक्ति यः ॥२२॥

सवैया ३१ ।

पावकतैं जल होय वारिधितैं थल होय
सस्त्रतैं कमल होय ग्राम होय बनतैं ।
कूपतैं विवर होय पर्वततैं घर होय
वासवतैं दास होय हितू दुरजनतैं ॥
सिंहतैं कुरंग होय व्याल स्यालअंग होय
विषतैं पियूष होय माला अहिफनतैं ।
विषमतैं सम होय संकट न व्यापै कोय
एते गुन होय सत्य वादीके दरसतैं ॥ २३ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि
स्तमभिसरति कीर्तिर्मुञ्चते तं भवार्ति ।

स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्त
  परिहरति विपत्त यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

रोडक छन्द ।

ताहि रिद्धि अनुसरै, सिद्धि अभिलाष धरै मन ।
विपत सगपरिहरै, जगत विसरै सुजसधन ॥
भवआरति तिहिं तजै, कुगति वंछै न एक छन ।
सो सुरसम्पति लहै, गहै नहि जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

शिखरणी

अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः
  शुभश्रेणिस्तस्मिन्वसति कलहंसीव कमले ।
विपत्तस्माद्दूरं व्रजति रजनीवाम्बरमणे-
  र्विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥ ३४ ॥

(३१ मात्रा) सवैया छन्द ।

ताको मिलै देवपद शिवपद, ज्यों विद्याधन लहै विनीत ।
तामैं आय रहै शुभ-पकति, ज्यौं कलहंस कमलसों मीत ।
ताहि विलोकि दुरै दुख दारिद, ज्यौं रवि आगम रैन वितीत ।
जो अदत्त धन तजत 'वनारसि' पुण्यवत सो पुरुष पुनीत ॥३४॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधनं सर्वागसां साधन
  प्रोन्मीलद्वधबन्धनं विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम् ।
दौर्गत्यैकनिबन्धनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं
  प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ॥३५॥

मरहट्टा छन्द ।

जो कीरति गोपहि धरम विलोपहि, करहि महा अपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुरगति जोरहि, जोरहि दुख ब्याप ॥
जो संकट आनहि, दुर्गति ठानहि, बधबंधनको गेह ।
सब औगुण मंडित गहै न पंडित सो अदत्तधन येह ॥२५॥

हरिणी ।

परजनमनःपीडाक्रीडावनं वधभावना-
भवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमण्डलम् ।
कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं
नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकाङ्क्षिणाम् ॥२६॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जो परिजन संताप केलिवन, जो वध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिवेलघनमंडल जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दृढ़ आगल, जो अपहरण मुक्तिसुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन, निजहितहेत 'बनारसिदास' ॥२६॥

शीलाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक-
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥२७॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

सो अपजशको डंक वजावत, लावत कुल कलंक परधान ।
सो चारितको देत जलांजुलि, गुन वनको दावानल दान ॥
सो शिवपन्थकिवार वनावत, आपति विपति मिलनको थान ।
चिन्तामणि समान जग जो नर, शील रतन निजकरत मलान ॥२७॥

मालिनी ।

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्क
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥२८॥

रोडक छन्द ।

कुल कलंक दलमलहि, पापमलपंक पखारहि ।
दारुन संकट हरहि, जगत महिमा विस्तारहि ॥
सुरग मुकति पद रचहि, सुकृतसंचहि करुणारसि ।
सुरगन वंदहि चरन, शीलगुण कहत 'वनारसि' ॥ २८॥

शार्दूलविक्रीडित ।

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजन्ति क्षयं
कल्याणानि समुल्लसन्ति विबुधाः सान्निध्यमध्यासते ।
कीर्तिः स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघं
स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदधते ये शीलमाबिभ्रते ॥२९॥

मत्तगयन्द ।

ताहि न वाघ भुजंगमको भय, पानि न वोरै न पावक जालै ।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर, सो शुभ रीत करै अघ टालै ॥

तासु विवेक बढ़ै घट अंतर सो सुरके सिवके सुख माने।
ताकि सुरीति होय तिहूँ जग, जो नर शीलअखंडित पाले ॥३९॥

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद्ध्रुवम्॥४०

षट्पद।

अगनि नीरसम होय मालसम होय भुजंगम।
नाहर मृगसम होय कुटिल गज होय तुरंगम॥
विष पियूषसम होय सिखरपाषान खंडमित।
विघन उलटि आनंद, होय रिपु पलटि होय हित॥
लीलातलावसम उदधिजल गृहसमान अटवी विकट।
इहिविधि अनेक दुख होहिं सुख शीलवंत नरके निकट॥

परिग्रहाधिकार।

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन्धर्मद्रुमोन्मूलनं
क्लिश्नन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीं लोभाम्बुधिं वर्धयन्।
मर्यादातटमुद्रुजन् शुभमनोहंसप्रवासं दिशन्
किं न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः॥४१॥

(३१ मात्रा) सवैया।

अंतर मलिन होय निज जीवन, विनसै धर्मतरोवरमूल।
किलसै दयानीतिनलिनीवन पोषै लोभ सागर समतूल॥

उठै वाद मरजाद मिटै सब, सुजन हंस नहिं पावहिं कूल।
बढत पूर पूरै दुख संकट, यह परिग्रह सरितासम तूल॥ ४१॥

मालिनी।

कलहकलभविन्ध्यः कोपगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु-
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः॥ ४२॥

मनहरण।

कलह गयन्द उपजायवेको विंध्यगिरि,
कोप गीधके अघायवेको समशान है।
संकट भुजगके निवास करिवेको बिल
वैरभाव चौरको महानिशा समान है॥
कोमल सुगुनघनखंडवेको महा पौन,
पुण्यवन दाहिवेको दावानल दान है।
नीत नय नीरज नसायवेको हिम राशि,
ऐसो परिग्रह राग दुखको निधान है॥ ४२॥

शार्दूलविक्रीडित।

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभूः
पापानां खनिरापदां पदमसद्ध्यानस्य लीलावनम्।
व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः
केलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम्॥४३॥

आरम्भको महिल अधीरजको बास हिय
महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है।
भ्रमको निधान दुरध्यानको विलासवन
विपतको थान अभिमानकी निशानी है॥
दुरितको खेत रोग शोग उतपति हेत
कलहनिकेत दुरगतिकी निदानी है।
ऐसो परिग्रह भाग सबनिको त्याग जोग
आतम गवेषी याग याही भांति जानी है॥ ४२॥

वह्निस्तृप्यति नेन्धनैरिह यथा नाम्भोभिरम्भोनिधि-
स्तद्वन्मोहघनो धनैरपि घनैर्जन्तुर्न संतुष्यति।
न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भवं
यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम्॥

छप्पय।

ज्यों महि अगि अघाय पाय ईंधन अनेक विधि।
ज्यों सरिता घन नीर तृपति नहिं होय नीरनिधि॥
त्यों असंख्य धन बढ़त मूढ़ संतोष न मानहिं।
पाप करत नहिं डरत धर्म कारन मन आनहिं॥
परतक्ष विलोकि जन्मन मरन अथिर रूप संसारभ्रम।
समुझै न आप पर ताप गुन मूढ़ बनारसि मोह भ्रम॥४३॥

क्रोधाधिकार

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्रासमंपादने
सर्पस्य प्रतिबिम्बमङ्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः।

चैतन्यस्य निपूदने विषतरोः सब्रह्मचारी चिरं
स क्रोधः कुशलाभिलापकुशलैर्निर्मूलमुन्मूल्यताम् ।४५।

गीताछन्द ।

जो सुजन चित्त विकार कारन, मनहु मदिरा पान ।
जो भरम भय चिन्ता बढावत, असित सर्प समान ॥
जो जतु जीवन हरन विषतरु, तनदहनदवदान ।
सो कोपराशि विनाशि भविजन, लहहु शिव सुखथान ॥ ४५ ॥

हरिणी ।

फलति कलितश्रेयः श्रेणीप्रसूनपरम्परः
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्तिं तपश्चरणद्रुमः ।
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्तिं प्रकोपहविर्भुजो
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥४६॥

३१ मात्रा सवैया ।

जब मुनि कोइ बोई तप तरुवर, उपशम जल सींचत चितखेत ।
उदित ज्ञान शाखा गुण पल्लव, मगल पहुप मुकत फलहेत ॥
तब तिहि क्रोध दवानल उपजत, महामोह दल पवन समेत ।
सो भस्मत करत छिन अतर, दाहत बिरखसहित मुनिचेत ॥ ४६ ॥

शार्दूलविक्रिडित ।

संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय-
त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कलिम् ।
कीर्तिं कृन्तति दुर्मतिं वितरति व्याहन्ति पुण्योदयं
दत्ते यः कुगतिं स हातुमुचितो रोषः सदोषः सताम् ॥

वस्तुछन्द ।

कलह खेदन कलह भवन करन उदवेग ।
परासंजन हित हरन दुखविलापसंतापसाधन ॥
दुरबैन समुचरन धरम पुण्य मारग विराधन ।
विनय दमन दुरगति गमन कुमति रमन गुणखोप ।
ये सब लक्षण जान मुनि तजहिं तत्क्षण कोप ॥ ४७ ॥

यो धर्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां
दन्तीवेन्दुकलां विधुन्तुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम् ।
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं
तृष्णां घर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम् ।४८।

षट्पद ।

कोप धरम धन दहै, अगनि जिम बिरख बिनासहि ।
कोप सुजस आवरहि, राहु जिम चंद गरासहि ॥
कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता बिदलहि ।
कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर दलहि ॥
संचरत कोप दुख ऊपजै, बढ़ै तृषा जिम धूपमहँ ।
करुणा बिलोप गुण गोप कृत कोप निपट मरदंत कहँ ॥ ४८ ॥

मानाधिकार

मन्दाक्रान्ता ।

यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां

यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं
तं मानाद्रिं परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्ते ॥४६॥

(मात्रा ३१) सवैया ।

जातैं निकसि विपति सरिता सब, जगमे फैल रही चहुं ओर ।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं, माया कुमतिगुफा अति घोर ॥
जहँवधवुद्धि धूमरेखा सम, उदित कोप दावानल जोर ।
सो अभिमान पहार पटंतर तजत ताहि सर्वज्ञकिशोर ॥४६॥

शिखरिणी ।

शमालानं भञ्जन्विमलमतिनाडीं विघटय-
न्किरन्दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमसृणिम् ।
भ्रमन्नुर्व्यां स्वैरं विनयवनवीथीं विदलयन्,
जनः कं नानर्थं जनयति मदान्धो द्विप इव ॥५०॥

रोडक छन्द ।

सजहिं उपशम थंभ, सुमति जंजीर विहंडहिं ।
कुवचन रज समहहिं, विनयवनपंकति खंडहिं ॥
जगमे फिरहिं स्वछन्द, वेद अंकुश नहिं मानहिं ।
गज ज्यों नर मदअन्ध; सहज सब अनरथ ठानहिं ॥५०॥

शार्दूलविक्रीडित ।

औचित्याचरणं विलुम्पति पयोवाहं नभस्वानिव
प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशा जीवितम् ।

कीर्त्तिं कैरविणीं मतङ्गज इव प्रोन्मूलयत्यञ्जसा
मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ॥५१॥

कवित्त छन्द ।

मान सत्रु कवित आचार भंजन करै
पवन संचार जिम घन विहडाहि ।
मान आदर समय विनय खोवै सकल
भुजग विष नीर जिम मरन मडाहि ॥
मानके चलित जगमाहि जिमसी सुजस
कुपित मातंग जिम कुमुद खंडाहि ।
मानकी रीति विपरीति करतूति जिम
अधमकी प्रीति पर नीत छंडाहि ॥ ५१ ॥

वसन्ततिलका ।

मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
संजीवनं विनयजीवितमङ्गभाजाम् ।
जात्यादिमानविषजं विषमं विकारं
तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम् ॥ ५२ ॥

(मात्रा १५) चौपाई ।

मान विषम विषधर संचरै । विनय विनासी बौखिवदरै ॥
कोमल गुन अमृत संजोग । विनसै मान विषम विषरोग ॥ ५३ ॥

मायाधिकार

मालिनी ।

कुशलजननवन्ध्या सत्यसूर्यास्तसन्ध्या
कुगतियुवतिमाला मोहमातङ्गशाला ।
शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं
व्यसनशतसहायां दूरतो मुञ्च मायाम् ॥५३॥

रोडक छन्द ।

कुशल जननकों बाँझ, सत्य रविहरन सांझथिति ।
कुगति युवति उरमाल, मोह कुंजर निवास छिति ॥
शम वारिज हिमराशि, पाप संताप सहायनि ।
अयश खानि जग जान, तजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

उपेन्द्रवज्रा ।

विधाय माया विविधैरुपायैः परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।
ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखाः स्वमेव ॥५४॥

वेसरि छन्द ।

मोह मगन माया मति संचहि । करि उपाय औरनको वंचहि ।
अपनी हानि लखै नहिं सोय । सुगति हरै दुर्गति दुख होय ॥५४॥

वंशस्थविलम ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।

मोऽनर्थमार्थं न पतन्त्यमीयते
यथा विडालो लगुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

पद्धरि छन्द ।

माया अविश्वास विलास गेह । जो करहि मूढ जन धन सनेह ।
सो कुगति बंध नहिं लखै ग्म । तजि मय बिलाव पय पियत जेम ।५५।

वसन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते
यत्पाटवं कपटलम्पटचित्तवृत्ते ।
जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा
नापथ्यभोजनमिवामयमायती तत् ॥ ५६ ॥

अमानक छन्द ।

ज्यों रागी कर कुपथ बढावै रोग तन ।
त्यों कपटी करि कपट मुग्ध धन हरहि ।
करहि कुगतिको बंध, हरष मनमें धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार

शार्दूलविक्रीडित ।

यद् दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं
गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ॥५७॥

मनहरण ।

सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमैं,
कंपै चितभीत पथ, गाहै वीच वनमैं ।
ठानै कृषिकर्म जामें, शर्मको न लेश कहु,
संकलेशरूप होय, जूझ मरै रनमैं ॥
तजै निज धामको विराम परदेश धावै,
सेवै प्रभु कृपण मलीन रहै मनमैं ।
डोलै धन कारज अनारज मनुज मूढ,
ऐसो करतूति करै, लोभकी लगनमैं ॥ ५७ ॥

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भवः
क्रोधाग्रेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः ।
क्रीडासद्मकलेर्विवेकशशिनः स्वर्भानुरापन्नदी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ।५८।

पूरन प्रताप रवि, रोकिवेको धाराधर,
सुकृति समुद्र सोखिवेको कुम्भनद है ।
कोप दव पावक जननको अरणि दारु,
मोह विष भूरुहको, महा दृढ कंद है ॥
परम विवेक निशिमणि ग्रसिवेको राहु,
कीरति लता कलाप, दलन गयंद है ।
कलहको केलिभौन आपदा नदीको सिंधु,
ऐसो लोभ याहूको विपाक दुख द्वंद है ॥ ५८ ॥

वसंततिलका ।

निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे
दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्तिधूमे ।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने
लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ८९ ॥

परम धरम बन दहै दुरित अंबर गति धारहि ।
कुजस धूम उदगरै भूरि भय भस्म बिथारहि ॥
दुख फुलिंग फुंकरै; तरल तृष्णा कल काढ़हि ।
धन ईंधन आगम संजोग दिन दिन अति बाढ़हि ॥
लहलहै लोभ पावक प्रबल पवन मोह उद्धत बहै ।
दज्झहि उदारता आदि बहु गुण पतंग कँवरा कहै ॥ ८९ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहे
चिन्तारत्नमुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम् ।
विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियो
ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं बिभ्रते ॥ ९० ॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जिनकै कामधेनु ताके घर पूरे कल्पवृक्ष सुखपोष ।
अखय भँडार भरे चिंतामणि तिनको सुलभ सुरग की माप ॥
ते नर स्ववश करैं त्रिभुवनपति तिनसौं विमुख रहै दुख दाप ।
सबै निधान सदा ताके ढिग; जिनके हृदय बसत संतोष ॥ ९० ॥

सज्जनाधिकार.

शिखरिणी ।

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा ॥६१

(१६ मात्रा) चौपाई ।

वरु अहिवदन हत्थ निज डारहि । अगनि कुण्डमें तनपर जारहि ।
डारहिं उदर करहि निप भञ्जन । पै दुष्टता न गहहि विचच्छन ॥६१॥

वसन्ततिलका ।

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च ।
स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च ।
दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थम्
धान्येऽनलं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

ज्यों कृषिकार भयो चितवातुल, सो कृषिकी करनी इम ठानै ।
बीज बवे न करै जल सिंचन, पावकसों फलको थल भानै ॥
त्यों कुमती निज स्वारथके हित, दुर्जनभाव हिये महि आनें ।
संपति कारन बंध विदारन, सज्जनता सुखमूल न जानें ॥ ६२ ॥

पृथ्वी।

वरं विभववन्ध्यता सुजनभावभाजां नृणा-
मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिताः संपदः।
कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं
विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता॥ ६३॥

आभानक छन्द।

वरु दरिद्रता होइ, करत सत्यम क्रिया।
दुराचारसौं मिलै, राज सो नहिं भला॥
ज्यौं शरीर कृश सहज सुख त्यों देत है।
सूजी थूलता बढ़ै; मरनको हेत है॥ ६३॥

शार्दूलविक्रीडित।

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं
संतोषं वहते परर्द्धिषु पराबाधासु धत्ते शुचम्।
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लङ्घय-
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम्॥६४॥

षट्पद।

नहिं जंपहि पर दोष अल्प परगुण बहु मानहि।
हृदय धरहि संतोष दीन लखि करुणा ठानहि॥
उचित रीति आदरहि विमल नय नीति न छंडहि।
निज सलाहन परिहरहि राग रवि विषय विहंडहि॥
मंडहि न कोप दुरवचन सुनि; सहज मधुर धुनि उच्चरहि।
कहि 'कुंवरपाल' जग जास जसि; ये चरित्र सज्जन करहि॥६४॥

गुणिसंगाधिकार ।

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमा-
न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधः श्रुतम् ।
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ
यः सङ्गं गुणिना विमुच्य विमतिः कल्याणमाकाङ्क्षति ।

मत्तगयन्द (सवैया)

सो करुणाविन धर्म विचारत, नैन बिना लखिवेको उमाहै ।
सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै ॥
सो हियशून्य कवित्त करै, समता विन सो तपसों तन दाहै ।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ, जो सत सग तजै हित चाहै ।

हारिणी

हरति कुमतिं भिन्ते मोह करोति विवेकितां
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम् ।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणा किं नाभीष्टं गुणोत्तमसगमः ॥ ६६ ॥

घनाक्षरी ।

कुमति निकंद होय महा मोह मद होय;
जगमगै सुयश विवेक जगै हियसों ।
नीतिको दिढाव होय विनैको बढाव होय,
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों ॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय,

बरतै समाधि ज्यों पियूष रस पियेसों।
ताप परि पूर होय रोग दृष्टि दूर होय
एते गुन होहिं सत-सगतिके किएसौं ॥ ६६ ॥

शार्दूलविक्रीडित

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम्।
रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियं
चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां सङ्गं तदङ्गीकुरु ॥६७॥

कुण्डलिया

'कौरा' ते मारग गहैं, जे गुनिजनसेवत।
ज्ञानकला तिनके जगै ते पावहिं भव अन्त ॥
ते पावहिं भव अंत, शांत रस ते चित धारहिं।
ते अघ आपद हरहिं परमकीरति विस्तारहिं ॥
होहिं सुजन जे पुरुष गुनी वारिज के भौंरा।
ते सुर संपति लहैं गहैं ते मारग 'कौरा' ॥ ६० ॥

हरिणी।

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति।
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनीतिलतासु य
किमभिलषतां श्रेयः श्रेयान्स निर्गुणिसंगमः ॥ ६८ ॥

षपद।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहि ॥
जो प्रताप संहरहि, पवन जिम मेघ विडारहि ॥

जो सम दम दलमलहि, दुरद जिम उपवन खडहि ।
जो सुछेम छय करहि, वज्र जिम शिखर विहडहि ॥
जो कुमति अग्नि ईंधनसरिस, कुनयलता दृड मूल जग ।
सो दुष्टसग दुख पुष्ट कर, तजहिं विचच्छणता सुमग ॥ ६८ ॥

इन्द्रियाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूकलाश्वायते
कृत्याकृत्यविवेकजीवितहृतौ यः कृष्णसर्पायते ।
यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव ॥ ६९ ॥

हरिगीतिका ।

जे जगत जनको कुपथ डारहिं, वक्र शिक्षित तुरगसे ।
जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे ॥
जे पुण्यवृच्छकुठार तीखन, गुपति व्रत मुद्रा करैं ।
ते करनसुभट प्रहार भविजन, तव सुमारग पग धरैं ॥ ६९ ॥

शिखरिणी ।

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं
पदं तद्दोषाणां करणनिकुरम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

घनाक्षरी ।

ये ही हैं कुगतिके निदानी दुख दोष दानी
इनहीकी संगतसों संग भार वाहिये ।
इनकी मगनतासों विभौको विनाश होय
इनहीकी प्रीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों विडारैं दुराचार धारैं
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री सुभट इनहिं जीतै सोई साधु
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥७० ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यत्तो मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागममममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।
श्रेयः पुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीत सर्वं तत ॥७१॥

सवैया ।

मौनके धरैया गृह त्यागके करैया विधि
रीतके सधैया पर निन्दासों अपूठे हैं ।
विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके वासी शुचि,[1]
अंगके अचारी हितकारी बैन बूठे हैं ।
आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी
कष्टके सहनहार रामाहूसों रूठे हैं ॥

---

१ झूठे–पाठ भेद है ।

इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते,
इन्द्रिनके जीते बिना सरवग झूठे हैं ॥ ७१ ॥

शार्दूल विक्रडित ।

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मीणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।
सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टं यथा
कामीन कुपथाध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक् ॥७२॥

सवैया ।

धर्मतरुभंजनको महा मत्त कुंजरसे,
आपदा भंडारके भरनको करोरी हैं ।
सत्यशील रोकवेको पौढ परदार जैसे,
दुर्गतिके मारग चलायवेकों धोरी हैं ॥
कुमतिके अधिकारी कुनैपथके विहारी,
भद्रभाव ईंधन जरायवेकों होरी हैं ।
मृषाके सहाई दुरभावनाके भाई ऐसे,
विषयाभिलाषी जीव अघके अघोरी हैं ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

शार्दूल विक्रीडित ।

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते
चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति॥७३॥

मत्तगयन्द छन्द ।

नीचकी धार ढरै सरिता जिम घूम बढावत नींदकी नाई ।
चंचलता प्रगटै चपला जिम अंध करै जिम धूमकी झाई ॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद ज्यों मद पोषित मूढकी ताई ।
ये करतूति करै कमला जग डोलत ज्यों कुलटा बिन साँई ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ॥७४॥

सवैया ।

बंधु विरोध करै निशिवासर दंडनकों नरवै[1] छल जोवै ।
पावक दाहत नीर बहावत है दगमाल गिराधर ढावै ॥
भूतल रक्षित जक्ष हरै करकै दुरमति कुसतति खोवै ।
ये उतपात उठैं धनके ढिग दामधनी यहु क्यों सुख सोवै ॥ ७४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

नीचस्यापि चिरं चटूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नतिं
शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम् ।
निर्वेदं न विदन्ति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे
कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति वित्तार्थिनः ॥

---

१ राजा ।

घनाक्षरी ।

नीच धनवंत नाहि निरखै अधीन देख
यह न विलोकि यह चरन गहत है।
वह अहंमद नर यह अधिकारी धर
यह मद लीन यह दीनता करत है।
वह चित्त कोप ठानै यह याको प्रभु मानै
याके कुवचन सब यह पै सहत है।
ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुण दोष,
अरथाभिलाषी जीव अरथ चहत है ॥ ७५ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः सङ्गादिवाम्भोजिनी-
ससर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम्।
चैतन्यं विषमनिधेरिव नृणामुज्जासयत्यञ्जसा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम्॥७६

सवैया ।

नीचहीकी ओरको उमंग चलै कमला सो,
पिता सिंधु सलिलस्वभाव याहि दियो है।
रहै न सुथिर ह्वै सकटक चरन याको,
वसी कजमाहि कजकोसो पद कियो है॥
जाको मिलै हितसो अचेत कर डारै नाहि,
विषकी बहन तातैं विषकोसो हियो है।
ऐसी ठगहारी जिन धरमके पथडारी,
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है॥ ७६॥

कहै कुँवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरब ॥७८॥

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोकते
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालिङ्गति ।
श्रेयःसंहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
र्मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यार्थमर्थं निजम् ॥

सवैया इकतीसा

ताहिको सुबुद्धि वरै रभा ताकी चाह करै ।
चदन सरूप हो सुयश ताहि चरचै ।
सहज सुहाग पावै सुरग समीप आवै,
वार वार मुकति रमनि ताहि अरचै ॥
ताहिके शरीरकों अलिंगति अरोगताई,
मगल करै मिताई प्रीति करै परचै ।
जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरमके हेतको सुखेत धन गरचै ॥ ७६ ॥

मन्दाक्रान्ता ।

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः ।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंपत्
सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥ ८० ॥

पद्मावती छन्द ।

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै ।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो सुरलोक संपदा पावै ॥

ताको रुचि करै शिव मारग, सो निरदोष भावना भावै ।
जो नर त्याग कपट 'कु वर' कह, तिनिसौं सम्यक्त्व पद पावै ॥८०॥

तपप्रभावाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं यत्कामदावानल-
ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम् ।
यत्प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता-
मूलं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ॥८१॥

षट्पद ।

जो पूरव कृत कर्म, पिंड गिरिदलन वज्रधर ।
जो मनमथ दव ज्वाल, माल घँग हरन मेघझर ॥
जो प्रचंड इंद्रिय भुजंग थंभन दुर्मद वर ।
जो विभाव संतम सुर्पुंज, अंकुर प्रभाव कर ॥
जो लब्धि बेल उपजंत घट, तासु मूल रक्षा सहित ।
सो सुतप अंग बानारसि सुविधि करहि निपुनि वंछारहित ॥ ८२ ॥

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति ।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणां
स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥

घनाक्षरी ।

जाके आदरत महा रिद्धिसौं मिलाप होत
मैन का अपमान होत कर्म वन दाहिये ।

विधन विनास होय गीरवाण दास होय,
　　ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये ॥
देवपद खेल होय मंगलसों मेल होय,
　　इन्द्रिनिकी जेल होय मोक्षपंथ गाहिये ।
जाकी ऐसी महिमा प्रकट कहै "कौंरपाल",
　　तिहुलोक तिहुकाल सो तप सराहिये ॥ ८२ ॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना
　　दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम् ।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरं
　　कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा ॥८३

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनकों दव, पावकसों नहि दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततक्षण; जो न असंडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत, तौलग घोर घटा नहि खीसै ।
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ, कर्मकुलाचल और न पीसै ॥८३॥

स्रग्धरा ।

संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः
　　पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।
श्रद्धाम्भःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः
　　स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तप कल्पवृक्ष ॥

छप्पय।

सुकृत मूल संतोष प्रशम गुन मंडल पेड प्रबंध।
पंचाचार सु शाख; शील मणि पल्लव सुख॥
अभय अंग दलपुंज; वैभव पहुप सुगंधित।
सुख्यसमाज विस्तार भाव शिव सुफल अखंडित॥
परतीत धार जल सिंच किय भाति सुरंग दिन दिन पुषित।
जयवंत जगत यह सुतपतरु; मुनि विहंग सेवहिं सुचित॥ ८४॥

भावनाधिकार।

शार्दूलविक्रीडित।

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभोः
सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि।
विष्वग्वर्षमिवोपरावनितले दानार्हदर्चातप-
स्स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम्॥

पद्मावती छन्द।

ज्यों नीराग पुरुषके सनमुख; पुरकामिनि कटाक्ष कर रूठी।
ज्यों धन त्यागरहित प्रभुसेवन ऊसरमें बरषा जिम छूटी॥
ज्यों शिलमाहिं कमलको बोवन पवन पकर जिम बाँधिये मूठी।
त्यों करतूति होत जिम निष्फल; त्यों बिनभावक्रिया सब झूठी॥८५॥

सर्वं जीप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति।

विधन विनास होय गीरवाण दास होय,
ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये ॥
देवपद खेल होय मगलसों मेल होय,
इन्द्रिनिकी जेल होय मोक्षपंथ गाहिये ।
जाकी ऐसी महिमा प्रकट कहै "कौंरपाल",
तिहुलोक तिहुकाल सो तप सराहिये ॥ ८२ ॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना
दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम् ।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरं
कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा ॥८३

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनकों दवः पावकसों नहिं दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततक्षणः जो न अखंडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत, तौलग घोर घटा नहि खीसै ।
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ, कर्मकुलाचल और न पीसै ॥८३॥

स्रग्धरा ।

संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।
श्रद्धाम्भःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तप कल्पवृक्ष ॥

मत्त कषायगिरि भंजवेको वज्र गदा,
भो समुद्र तारवेको पौढी महा तरी है।
मोक्षपन्थ गमवेकों बेसरी विलासवती,
ऐसी शुद्ध भावना अखंड धार ढरी है॥ ८७॥

शिखरिणी।

घनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं
क्रियाकाण्डं चण्डं रचितमवनौ सुप्तमसकृत्।
तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि चीर्णं चिरतरं
न चेच्चित्ते भावस्तुषवपनवत्सर्वमफलम्॥८८॥

आभानक छन्द।

गहि पुनीत आचार, जिनागम जोवना।
कर तप संजम दान, भूमि का सोवना॥
ए करनी सब निफल, होंय बिन भावना॥
ज्यों तुष बोए हाथ, कछू नहिं आवना॥८८॥

वैराग्यविचार।

हरिणी।

यदशुभरजःपाथो दृप्तेन्द्रियद्विरदाङ्कुशं
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिशृङ्खला।
विरतिरमणीलीलावेश्म स्मरज्वरभेषजं
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाभयः॥८९

कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सते
मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ॥८६

घनाक्षरी ।

पूरव करम दहै, सरवज्ञ पद लहै,
गहै पुण्यपथ फिर पापमैं न आवना ।
करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै,
लागै दानशील तप सफल सुहावना ॥
पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट,
शर्म साध धर्मकी धरामैं करै धावना ।
एते सब काज करै अलखको अंग धरै,
चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना ॥ ८६ ॥

पृथ्वी ।

विवेकवनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीवनीं
भवार्णवमहातरीं मदनदावमेघावलीम् ।
चलाक्षमृगवागुरां गुरुकषायशैलाशनिं
विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥८७

सवैया इकतीसा

प्रशमके पोषवेको अमृतकी धारासम,
ज्ञानवन सींचवेको नदी नीरभरी है ।
चंचल करण मृग बाधवेको वागुरासी,
कामदावानल नासवेको मेघ झरी है ।

निःसारत्वे स्वात्करचरणविधा च शिवदा
विरता क्रूरागात्यपरनिपुणोऽन्त्याः स्फुरति चेत्॥

पद्मावती छन्द।

कीनी विन सुदेवकी पूजा, विन गुरुचरणकमल चित लायो।
सो वनवास वस्यो निशिवासर विन गुणवंत पुरुष यश गायो॥
विन तप किये कियो इन्द्री दम, सो पूरण विद्या पढ आयो।
सब अपराध पाप ताकों तब जिन वैराग्यरूप धन पायो॥ ५१॥

शार्दूलविक्रीडित।

भोगान्कृष्णभुजङ्गभोगविषमान्राज्यं रजःसन्निभं
बन्धून्बन्धनिबन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम्।
भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यजं
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान्॥

घनाक्षरी छन्द।

जाकों भोग भाव दीसैं जैसे कालकैसे फन,
राजको समाज दीसै जैसो रजकोष है।
जाके परवारको बढाव जैसो बंधन सूझै,
जिनै सुख सौंजको विचारै विषपोष है॥
लसै जो विभूति ज्यों भसमकी विभूति कहै,
ममता विलासमैं विलोकै दुख दोष है।
ऐसो जन त्यागै यह महिमा विरागकी,
ताहीको वैराग सही ताके शिव मोष है॥ ५२॥

इति २१ अधिकार समाप्त।

घनाक्षरी ।

अशुभता धूर हरवेकों नीर पूर सम,
विमल विरत कुलवधू को सुहाग है।
उदित मदन जुर नाशवेकों जुराकुश;
अक्षगज थंभनको अंकुशको दाग है॥
चचल कुमन कपि रोकवेको लोहफन्द,
कुशल कुसुम उपजायवेको बाग है।
सूधा मोक्षमारग चलायवेको नाभी रथ
ऐसो हितकारी भयभंजन विराग है॥ ८९॥

वसन्ततिलका।

चण्डानिलः स्फुरितमब्दचयं दवार्चि-
र्वृक्षव्रजं तिमिरमण्डलमर्कबिम्बम्।
वज्रं महीध्रनिवहं नयते यथान्तं
वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम्॥ ९०

अभानक छन्द ।

ज्यों समीर गंभीर, घनाघन छय करै।
वज्र विदारै शिखर, दिवाकर तम हरै॥
ज्यो दव पावक पूर, दहै घनकुंजको।
त्यों भजै वैराग, करमके पुंजको॥ ९०॥

शिखरिणी।

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो-
स्तपस्या निःसीमक्लमपदमुपास्या गुणवताम्

शार्दूलविक्रीडित।

कृत्वार्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं,
हित्वा सङ्गमधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्त्वा धनम्।
गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वान्तरारिव्रजं
स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखम्॥

वस्तु छन्द।

देव पूजहिं देव पूजहिं, रचहिं गुरु सेव।
परमागमरुचि धरहिं, तजहिं कुसंगत सतवय।
गुनि संगति आदरहिं, करहिं त्याग दुर्भेद मनवच॥
देहिं सुपातहिं दान नित जपैं पंचनवकार।
ये करनी जे आचरहिं, ते पावैं भवपार॥९५॥

हरिणी।

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-
भ्युदयजननी याति स्फीतिं यथा गुणसन्ततिः।
कलयति यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः
कुशलसुलभे न्याय्ये कार्यं तथा पथि वर्तनम्॥९६॥

दोहा छन्द।

गुन अरु धर्म सुथिर रहै, जस प्रताप गंभीर।
कुशल होय जिस भांति सों तिहिं मारग चल धीर॥९६॥

शिखरिणी।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं-
मुखे सत्या वाणी श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः।

अथ उपदेश गाथा ।

उपेन्द्रवज्रा ।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदान
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ॥

मत्तगयन्द ।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो गुरुकी उपसर्पन कीजे ।
दीन विलोक दया धरिये चित, प्रासुक दान सुपत्तहि दीजे ॥
गाहक ह्वै गुनको गहिये, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे ।
ये करनी करिये गृह में बस, यो जगमें नरभौ फल लीजे ॥

शिखरिणी ।

त्रिसंध्य देवार्चां विरचय च यं प्रापय यशः
श्रिय पात्रे वापं जनय नयमार्गं नय मनः
स्मरक्रोधाद्यारीन्दलय कलय प्राणिषु दयां,
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमल

हरिगीता छन्द ।

जो करै साध त्रिकाल सुमरण, जास जगयश विस्तरै
जो सुनै परमानहिं सुरुचिसों, नीत मारग पग धरै ।
जो निरख दीन दया प्रभु जै, कामक्रोधादिक हरै ।
जो सुधन सप्त सुखेत खरचै, ताहि शिवसंपति बरै ॥ ६४ ।

हृदि स्वच्छा वृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो–
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६७॥

कवित्त छन्द ।

वदन विनय मुकट सिर ऊपर, सुगुरुवचन कुंडल जुगकान।
अंतर शत्रुविजय भुजमंडन, मुकतमाल उर गुन अमलान॥
त्याग सहज कर कटक विराजत, शोभित सत्य वचन मुख पान।
भूषण तजहिं तऊ तन मंडित, यातैं सन्तपुरुष परधान॥ ६७॥

सार्दूलविक्रीडित।

वाञ्छा सज्जनसंगमे गुरुजने प्रीतिर्गुरोर्नम्रता,
विद्याया व्यसनं स्वयोषितिरतिर्लोकापवाद्भय ।
भक्तिश्चार्हति शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिःखले.
यस्यैताः परिणामसुन्दरकलाः श्लाघ्यः स एव क्षितौ ॥६८॥

घनाक्षरी।

गहैं जे सुजन रीत गुणी सों निवाहैं प्रीत,
सेवा साधैं गुरुकी विनैसों कर जोरकैं।
विधाको विसन धरैं परतिय संग हरैं,
दुर्जनकी संगतिसों बैठे मुख मोरकैं॥
तजैं लोकनिन्द्य काज पूजैं देव जिनराज,
करैं जे करन थिर उमग बहोरकैं।
तेई जीव सुखी होंय तेई मोख मुखी होंय,
तेई होंहिं परम करम फन्द तोरकैं॥ ६८॥

मालिनी ।

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि-
द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे ।
मधुकरसमता यस्तेन सोमप्रभेण
व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ १०१ ॥

कवित्त छन्द ।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर, मुनिपति अजितदेव अति आरज ।
ताके पद वादीमदभंजन, प्रघटे विजयसेन आचारज ॥
ताके पट्ट भये सोमप्रभ; तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।
जाके पढ़त सुनत अवधारत, ह्वै सुपुरुष जे पुरुष अनारज ॥१०१॥

विभिन्नप्रतियों में निम्नलिखित संस्कृत श्लोक और मिलते हैं पर इनका पद्यानुवाद नहीं मिलता।

भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्ति नगरीं
तदानीं मा कार्षीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम् ।
यतश्छायाप्येषां प्रथयति महामोहमचिरा-
दयं जन्तुर्यस्मात्पदमपि न गन्तुं प्रभवति ॥ १ ॥

पात्रे धर्म निबंधनं तदितरे श्रेष्ठं दया ख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्द्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमं ।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानसंपादकं,
भट्टादौ सुयशस्करं वितरणं नक्वाप्यहो निःफलं ॥२॥(दानअ.)

तारन अशोक वृक्ष ब्रह्मन आमर सो
पवन अगनि जल बसै एक बास है ॥
तारीके अभर तामें हर रूप विलपत,
महातम महातम तामें बहु मास है।
ऐसो 'ओंकार' के अमूल मूल मूलरस,
'बानारसीदासप्रभु' परम विलास है ॥ ३ ॥

सिद्धरूप शिवरूप भव भयभेदरूप
नररूप ज्ञानरूप विधिरूप आतमा।
गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गंभीररूप,
ध्येयरूप योगीरूप सरस सुहातमा ॥
एकरूप आदिरूप अगम अगाधिरूप
असंख्य अनंतरूप आदिरूप आतमा।
'बानारसीदास' द्रव्यपूजा व्यवहाररूप
शुद्धता स्वभावरूप भई शुद्ध आतमा ॥ ४ ॥

जु अनादि हुते भयो शुद्धता बिसरि गयो
परगुण ऐसा रमो पर ही को रसिया।
मिलमिलि निकट विकट भई मैल बिन
अपचकैं सुखी तामें अपचकैं दुखिया ॥
सम्यक बस विना दीसे अनादि काल,
विषम अपापनहि भरमामें दुखिया।
'बानारसीदास' जिन रीति विपरीति जाके
मेरे जानें ते तो नर मूढ़मैं मुखिया ॥ ५ ॥

अथ ज्ञान बावनी

घनाक्षरी ।

ओंकार शब्द विशद याके उभयरूप,
एक आतमीक भाव एक पुदगलको ।
शुद्धता स्वभाव लये उठ्यो राय चिदानंद,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जड़बलको ॥,
त्रिगुण त्रिकाल तातैं व्यय ध्रुव उतपात,
ज्ञाताको सुहात बात नहीं लाग खलको ।
"बनारसीदासजूके" हृदय 'ओंकार' वास,
जैसो परकाश शशि पक्षके शुक्लको ॥ १ ॥

निरमल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें श्रुतज्ञान परधान करी पायो है ।
ताके मूल दोय रूप अक्षर अनक्षरमें,
अनक्षर अग्र पिंड सैनमे बतायो है ॥
बावन वरण जाके असंख्यात सन्निपात,
तिनमे नृप 'ओंकार' सज्जनसुहायो है ।
'बानारसी दास' अंग द्वादश विचार यामें,
ऐसे 'ओंकार' कंठ पाठ तोहि आयो है ॥ २ ॥

महामंत्र 'गायत्री' के मुख ब्रह्मरूप भष्यो,
आतम प्रदेश कोई परम प्रकाश है ।

अनुभवज्ञानतैं निदान आनमान छूट्यो,

सरधानवान बान छहों द्रव्य करसें ।

करम उपाधि रोग लोग जोग भोग राते,

भोगी त्रिया योगी करामातहूको तरसें ॥

दुर्गति विषाद न उछाह सुर भौनवास,

समता सुछिति आतमीक मेघ बरसें ।

'बानारसीदासजूके' वदन रसन रस,

ऐसे रसरसिया ते अरसको परसें ॥ ६ ॥

आवरण समल विमल भयो ताके तुलें,

मोह आदि हने काहु काल गुनकसिया ।

लीन भयो लवलागी मगन विभावत्यागी,

ज्योतिके उदोत होत निज गुन पसिया ॥

'बानारसीदास' निज आतम प्रकाश भये,

आवें ते न जाहिं एक ऐसे वासवसिया ।

अरस परस दस आदि हीं अनन्त, जन्तु,

सुरससवादराचै सोई साँचो रसिया ॥ ७ ॥

इस ही सुरसके सवादी भये ते तो सुनौ,

तीर्थंकरचक्रवर्ति शैली अध्यातमकी ।

बल वासुदेव प्रति वासुदेव विद्याधर,

चारणमुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भ्रमकी ॥

अट्ठावीस लबधिके विविध सधैया साधु,

सिद्धिगति भये कीन्हीं सुगम अगमकी ।

कीरति सराहको प्रवाह वहै महानदी,
एतो देश उपमा है सबै जग जेर है।
हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेरो ऐसो,
'बानारसीदास' वसुधामें गिरि मेर है ॥ ११ ॥

रीति विपरीति रंग रान्यो परगुण रस,
छायो झूठे भ्रम तातें छूटी निधि घरकी।
तेरे घर ऋद्धि है अनंत आपरंग आये,
नेकु जो गरूरी फेरे हाथ होय हरकी ॥
कायके उपायसेती एती हौंस पूरै भले,
निजक्रियारूठे जेती हौंस पूजै नरकी।
'बानारसीदास' कहै मूढ़को विचार यह,
कोटीध्वज भयो चाहैं आस करै परकी ॥ १२ ॥

ऋतु बरसात नदी नाले सर जोरचढ़े,
बढ़ै नाहिं मरजाद सागरके फैलकी।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द वहे जात,
चित्रावेल आइ चढ़ै नाहीं काहू गैलकी ॥
'बानारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संच आवै वीर बुद्धि छैलकी।
कछु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यातमशैलकी ॥ १३ ॥

लवरूपातीत लागी पुण्यपाप भ्रांति भागी,
सहज स्वभाव मोहसेनाबल भेदकी।

ज्ञानकी अवनि पाई आतमअवनि आई,
तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥
राहुके विमान बढ़े कला प्रगटत पूर
होत जगाजोत जैसे पूनमके चंदकी ।
'बानारसीदास' ऐसे आठ कर्म भ्रमभेद
सकति संभारि देखी राजा चिदानंदकी ॥ १४ ॥

विकलपदव ठाम ठाम लोक सबकोटि
ऐसो पाठ पढ़े कहू ज्ञान हू न बढ़िये ।
मिथ्यामती पथि पथि शास्त्रके समूह पढ़े
संधीसमवाये पशुभावमोल मढ़िये ॥
दीपक संजोग दीनो चक्षुहीन ताके कर
मिष्ट पहार पावैं कबहू न चढ़िये ।
'बानारसीदास' सो तो ज्ञानके प्रकाश बिन
मिथ्या कथा पढ़े कहू कह्यो है सो पढ़िये ॥१५॥

एक मृतपिंड जैसे जलके संयोग भये
भाजन विशेष घोट घटमें भेद है ।
तैसे कर्मनीरचिदानन्दकी प्रणति दीजे
नरनारी पशु एक त्रिविध सुभेद है ॥
'बानारसीदास' जब जाको रूप जाको तप
झूठत संयोग ये उपाधिनको भेद है ।
पुण्यपापके परसे विशेष जीव भेद भये
पुण्यपाप प्रसंग बिना आतम अभेद है ॥ १६ ॥

ये ही ज्ञान सबद सुनत सुर ताहि सुन,
पटरस स्वाद मानै तू तो ताहि मान रे।
पिंड विरह्म डकी खबर खोजै ताहि खोज,
परगुण निज गुण जानै ताहि जान रे ॥
विषय कषायके विलास मडै ताहि छंड,
अमल अखंड ऋद्धि आनै ताहि आन रे।
'बानारसीदास' ज्ञाता होय सोई जानै यह,
मेरे मीत ऐसी रीत चित्तसुधि ठान रे ॥ १७ ॥

उद्यम करत नर स्वारथके काज सब,
स्वारथके उद्यमको ह्वै रह्यो बहर सो।
स्वारथको भजै निरस्वारथको तज रह्यो,
शहरको बन जानै बनको शहर सो ॥
स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
स्वारथ पिछाने बिन स्वारथ जहर सो।
'बानारसीदास' ऐसे स्वारथके रगराचे,
लोकनके स्वारथको लागत कहर सो ॥ १८ ॥

उलट पलट नट खेलत मिलत लोक,
याके उलटत भव एक तान ह्वै रह्यो।
अज हूं न ठाम आवै विकथा श्रवण भावै,
महामोह निद्रामें अनादि काल स्वैरह्यो ॥
'बानारसीदास' जागे जागै तासों बनि आवै,
जिनवर उकति अमृत रश च्वैरह्यो।

इत 'ज्ञातादल' उत 'मोहसेना' आई बन,
'बानारसीदास' जू 'कुमक' लीजो न्यानकी।
जीवै न अवश्य जाके बन्दूक की 'गोली' लागै,
जागै न मिथ्यात जोपै 'गोली' लागै 'ज्ञानकी'॥२२॥

घटमें विघट घाट उलट ऊरधवाट,
परगुण साधें ते अनन्त काल तंथको।
'सुषमना' आदि 'इला पिंगला' की सोंज भई,
षटचक्रवेधी गए जीत्यो मनमथको॥
सुलट्यो है कमल 'वनारसी' विशेष ताको,
सुनिवेकी इच्छा भई जिनमत ग्रन्थको।
ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साधै,
जोगनिधि साधै तो सिधावै सिद्धपंथको॥ २३॥

नीच मतिहीन कहै सो तो न व्है केवलीपैं,
कहै कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको।
धियागारी धरें धिया सारसुत ऐसी धरी,
मेधाके मिलापसों मथन निज चितको॥
मूरख कहैं ते साधें परम अवधिवार,
तहा न विचार कछु हित अनहितको।
'बानारसीदास' तोसो निज ज्ञान गेह आये,
लोगनकी गारी सो सिंगार समकितको॥ २४॥

चचलता वाला वेस भौंरी दै दै भूमि फिरै,
घर तरु भूमि देखै घूमत भरमतें।

यों ही भए योगपरमविसेसी परबंध
औदयिक भाव मूढ़ पावे ना मरमसों ॥
निजरूप मानै यातें पटनि विरोध मानै
बढ़े परभाव माही कठिन करमसों ।
'बानारसीदास' ऐसे मिथ्या विभाव छूटै
बुद्धि विसराम पावै स्वभाव परमसों ॥ २५ ॥
छत्रधार बैठे बने मोहमकी मीरसार
दीसत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है ।
सेना चारि साजिके विराजें देरा जोरी फेरी,
फेरसार करें मानो 'चौपर' पसारी है ॥
कहत 'बनारसी' पचाय पाँसा बारबार
रागरस राच्यो दिन बाराहीकी बारी है ।
सुन्यो ना कहानो न कहानचीको बोलपायो,
राज कसि काकगो कहाने दिन कहारी है ॥२६॥
जागो राव चेतन सहज पद धुरि आवे
धुरे कर्मरिपुभाव मनमें उमाहकी ।
सरदार भई बाकी लोकालोक परिमाण,
एकधनकर चितवत ओपकर चाहकी ॥
'बानारसीदास' ज्ञाता ज्ञान सेना बनि आई
भारि करें भस्म जिम ऐसी ही निवाहकी ।
कहानची दामध्यान ज्ञानकी कहानचे पूरे,
सूरे आप साहिब सुथिर ऐसी साहिबी ॥ २७ ॥

'झाग' उठें यामें यामें 'क्रोधफेन' फैलि रहे,
'त्रिवक्ततरगरंग' दूहू नमे आवना।
यामे 'तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह' यामें,
यामें 'मलदंक' याहि 'बंधद्रोह' भावना॥
'बनारसीदास' यामें 'आकृति अनेक' उठें,
यहा 'कुलकोड' योनि जाति दोप लावना।
बह्यो जात 'जल' तामें येते 'कविभाव' उठें,
आतमा बहिर तामें कहाँते स्वभावना॥ २८॥
निजकाज सबहीको अध्यातम शैली माझ,
मूढ क्यों न खोज देखै खोज औरवानमें।
सदा यह लोकरीति सुनी है 'बनारसीजू'
वचनप्रशाद नैकु ज्ञानीनके कानमें॥
चेरी जैसें मलिमलि धोवत विराने पाव,
परमनरजिवेको साझ औ विहानमें।
निजपाव क्यो न धोवै ? कोई सखी ऐसो कहै,
मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें॥ २९॥
ईकार मूरख विरानें घर टिक रह्यो,
जानै मेरो यही घर मैं भी याही घरको।
परमारथ न जानै तातैं भ्रमघेरो,
ठौर विना और ठौर अधर पधरको॥
नायो कहै परपच बंधद्रोह,
संग्रह समूह कियो सो तो पिंड परको।

'झाग' उठे यामें यामें 'क्रोधफेन' फैलि रहे,
'त्रिवलतरंगरंग' दृढू नमें आवना।
यामे 'तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह' यामें,
यामें 'मलपंक' याहि 'वंधद्रोह' भावना॥
'बनारसीदास' यामें 'आकृति अनेक' उठें,
यहां 'कुलकोढ' योनि जाति दोष लावना।
यह्यो जात 'जल' तामें येते 'कनिभाव' उठें,
आतमा वहिर तामें कहाँ ते स्वभावना॥ २८॥
निजकाज सवहीको अध्यातम शैली मांझ,
मूढ क्यों न खोज देखे खोज औरथानमें।
सदा यह लोकरीति सुनी है 'वनारसीजू'
वचनप्रसाद नेकु ज्ञानीनके कानमें॥
चेरी जैसें मलिमलि धोवत विराने पाव,
परमनरजिवेको साझ औ विहानमें।
निजपाव क्यो न धोवै? कोई सखी ऐसो कहै,
मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें॥ २९॥
टेककरि मूरख विरानें घर टिक रह्यो,
जानै मेरो यही घर मैं भी याही घरको।
घर परमारथ न जानै तातैं भ्रमघेरो,
ठौर विना और ठौर अधर पधरको॥
पचको भखायो कहै परपच वंचद्रोह,
संग्रह समूह कियो सो तो पिंड परको।

भासै प्रतिबिम्ब अम्बु बाबुसों अनेक फेन,
बूमतो सो दीसै पै न बूझै धर्म थलको ॥
ताकी दृष्टि पुग्गलसों चेतन न भिन्न दिवै
आचरण ऐसे सरधान न विमल को ।
'बानारसीदास' ज्ञान आतम सुमिर गुरु
खोसे परजायसों विकार कर्ममलको ॥ १६ ॥

द्रव्यकी होयनकी सरहद देहमात्र,
भावनकी लोकपरिमाण वाकी दृष्टि ना ।
भाव सरहद याकी अलोकलों अधिकाई
ये तो द्रुम कामकारी यातें कछू सिधि ना ॥
याके तो अभेद आदि अमल अखंड पूर
याके सेवत परपद कछू निज रिधि ना ।
'बानारसीदास' दोउ मीढि देखी दुनियामें
एक दिसि तेरी विधि एक दिसि विधिनय ॥१७॥

धर्मदेव नरको बचन जैसा गिरिराज,
मिथ्याती बचन दृढ़ारथको पटतरो ।
पारस पाषाण जैसें जाति एक भेदो भेद,
मूरख हररा जैसें हररा महतरो ॥
'बानारसीदास' कंकसार कन्कसार जैसो
जनमको चीस जैसो चीस मरणंतरो ।
अध्यातम शैली अन्य शैलीको विचार तैसो
ज्ञानकी सुर्दासमाहिं जागी पाको अंतरो ॥ १८ ॥

सुभरि विभावसिंधु समता स्वभावश्रोत,
'बानारसी' लाभै ताको भ्रमनको भै नहीं ।
संगी गच्छ सारिखो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
राख्यो सोऊ जानै भैया कहवेको है नहीं ॥३३॥

नैननतैं अगम अगम याही वैननतें
उलट पलट वहै कालकूट कहरी ।
मूल विन पाये मूढ कैसें जोग साधि आवैं,
सहज समाधिकी अगम गति गहरी ॥
अध्यातम सुन्यो तो पै सरधान ह्वै न आवै,
तौ तौ भैया तैं तो वडी राजनीति चहरी ।
'वानारसीदास' ज्ञाता जापै सधै सोई जाने,
उदधि उधानतें अधिक मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व निजकाज कह्यो सत्त्व परगुण गह्यो,
मनकी लहर मानों डसें नाग कारेसे ।
छिनकमें तपी छिन जपी ह्वैके जापजपै,
छिनकमें भोगी छिन जोग परजारेसे ॥
'वानारसीदास' एतो पूर्वकृत बध ताके,
औदयिक भाव तेई आपो कर धारेसे ।
जब लग मत्त तौलों तत्त्वकी पहुच नाहीं,
तत्त्व पायें मूढमती लागें मतवारेसे ॥ ३५ ॥

थिर थंभ उपल विपुल ज्योति सरतीर,
सत्ता आये आपनी न कोऊ काके दलको ।

'बानारसीदास' ज्ञाता ज्ञानमें विचार देखो
ज्ञान जोग जैसो होय गुप्त परधाम है ॥ ५१ ॥

वेदपाठवाले ब्रह्म कहै पै विचार बिना
सिव कोई सिव बात 'बौध' गुनगानकी ।
'जैमी' पर वचन वचन निजभिन्न जान
'बानारसी' कहै 'चारवाक' पुंचवानरी ॥
'बौध' कहै बुद्ध सम कछू एक देशवसे
'न्यायके करमवाद' द्रव्य कहावरी ।
ऐसो षटदरसमाहि भयो आहि किन पाले
छूट्यो न मिथ्यात तातैं मारग न पावही ॥ ५२ ॥

भेषधर कोटिक भयो है चौरासी में
बिना गुरुज्ञान मरते न विषयासमें ।
गुरु भगवान सही भगवानभक्ति कहै,
भक्तिसे गुरुभापे देखें वीर वागमें ॥
'बानारसीदास' ज्ञाता भगवानभेद पायो
भयो है उच्छाह तेरे वचन बखानमें ।
भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,
भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ५३ ॥

मोक्ष चलिवेको पंथ भूले पथ पथिक ज्यों,
पंथज्ञानहीन ताहि 'सुगुरु' सारसी ।
सहजसमाधि जोग साधिवेको 'रंगभूमि'
परम अगम पद पढ़िवेको 'आरसी' ॥

नरभव पाय पाय बहु भूमि धाय धाय,
पर गुण गाय गाय बहु देह धारी है।
नरभव पीछें देह नरक अनेक भव,
फिर नर देव नर असख्यात बारी है॥
एक देवभव पीछें तिर्यंच अनत भव,
'बानारसी' संसारनिवास दुःखकारी है।
लायक सुमतिपाय मोह सेना बिछुराय,
अब चिदानदराय शकति सँभारी है॥ ३६॥

पामर बरण 'शूद्र' वास तब देह बुद्धि,
अशुभको काज ताहि तातैं बडी लाज है।
वैश्यको विचार वाके कछू करतूति फेर,
'वैश्य' वास वसै तोलों नाहिं जोगराज है॥
'क्षत्री' शुद्ध परचड जैतवार काज जाके,
'बानारसीदास' ब्रह्म अगम अगाज है।
जैसे वास वसै लोय तामे तैसी बुद्धि होय,
'जैसी बुद्धि तैसी क्रिया क्रिया तैसो काज है॥४०॥

फटिक पाषाण ताहि मोतीकर मानै कोऊ,
घु घची रकत कहा रतन समान है।
हंस बक सेत कहा सेतको न हेत कछू,
रीरी पीरी भई कहा कंचनके वान है॥
भेष भगवानके समान कोऊ आन भयो,
मुद्राको मडान कहा मोक्षको सुथान है।

'बानारसीदास' आतम ध्यानसैं विचार देखो,
जाप जोग कैसो होत गुप्त परवान है ॥ ४१ ॥
वेदपाठवाले ब्रह्म कहैं पै विचार बिना;
शिव कोई मिल मान 'शैव' गुप्तगतचारी ।
'जैनी' पर कहत बचन निजमिज मान
'बनारसी' कहै 'चारवाक' सु बतावही ॥
'बौद्ध' कहै बुद्ध सम ब्रह्म एक वेदान्तसे
'न्यायके करमहार' करत बतावही ।
यहाँ परधानमाहि कहो भांति बिधि राखे,
छूट्यो न मिथ्यात तातैं प्रगट न पायहो ॥ ४२ ॥
भेषधार कोविद भम्यो है लखचौरासी मैं
बिना गुरुज्ञान भरे न विषयावमैं ।
गुरु भगवान सूझी समझानभ्रान्ति छूटै
ज्ञानिसे छुटुम्पावै जैसे नीर नावमैं ॥
'बानारसीदास' ज्ञाता भगवानभेद पायो
भयो है प्रकाश तेरे बचन ध्यानमैं ।
भेषधार कहै भैया भेषहीमैं भगवान,
भेषमैं न भगवान भगवान भावमैं ॥ ४३ ॥
मोक्ष चलिवेको पंथ भूलि पंथ पथिक ज्यों
पंथकहीन वाहि 'सुकरथ' सारसी ।
सहजसमाधि जोग साधिवेको 'रंगभूमि'
परम अगम पद पढिवेको 'पारसी' ॥

भवसिन्धु तारिवेको शवद धरै है 'पोत'
ज्ञानघाट पाये 'श्रुतलगर' लैम्कारसी ।
'समकित नैननिको याके वैन 'अंजन' से,
आतमा निहारिवेको आरसी 'वनारसी' ॥ ४४ ॥
जिनवाणी 'दुग्ध' माहिं 'विजया' सुमतिडार
निजस्वाद 'कदवृन्द' चहलपहलमें ।
विवे॰ विचार उपचार ए 'कसू मो' कीन्हों,
'मिथ्यासोफी' मिटि गये ज्ञानकी गहलमें ॥
'शीरनी शुकलध्यान अनहद 'नाद' तान,
'गान' गुणमान करै सुजस सहलमे ।
'बानारसीदास' मध्यनायक सभासमूह,
अध्यातमशैली चली मोक्षके महलमें ॥ ४५ ॥
रसातल तलैं पच गोलक अनन्त जंतु,
तामें दोऊ राशि अन्तरहित स्वरूप है ।
कटुक मधुर जौलों अगनित भिन्नताई,
चिक्कणताभाव एक जैसें तेलरूप है ॥
जैसें कोऊ जात अध चौइन्द्री न कहियत,
द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप है ।
'बानारसीदास' प्रभु वीर जिन ऐसो कह्यो,
आतम अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप है ॥ ४६ ॥
लक्ष कोटि जोरिजोरि कंचन भण्डार कियो,
करता मैं याको ये तो करै मेरी शोभ को ।

बैठे 'कौंरपाल' सभा जुरी मनभावनी ।
'बानारसीदास' जूके वचनकी बात चली,
याकी कथा ऐसी ज्ञाताज्ञानमनलावनी ॥
गुणवत पुरुष के गुण कीरतन कीजे,
'पीताबर' प्रीति करी सज्जन सुहावनी ।
वही अधिकार आयो 'ऊघते बिछोना पायो'
हुकम प्रसादतें भयी है 'ज्ञानबावनी' ॥ ५० ॥
सोलह सो छियासीये सवत कु वारमास,
पत्त उजियारे चन्द्र चढ़नेको चाव है ॥
विजैदशी दिन आयो शुद्ध परकाश पायो,
उतरा आषाढ उडुगन यहै दाव है ।
'बानारसीदास' गुणयोग है शुकलबाना,
पौरिषप्रधान गिरी करण कहाव है ।
एक तो अरथ शुभ महूरत वरणाव,
दूसरे अरथ यामें दूजो वरणाव है ॥ ५१ ॥
हेतवत जेते ताको सहज उदारचित्त,
आगे कहों एतो वरदान मोहि दीजियो ।
उत्तम पुरुष 'शिरीबानारसीदास' यश,
पन्नगस्वभाव एक ध्यानसों सुनीजियो ॥
पवनस्वभाव विसतार कीज्यो देशदेश,
भ्रमर स्वभाव निज स्वाद रस पीजियो ।
बावन कवित्त ये तो मेरी मतिमान भये,
हसके स्वभाव ज्ञाता गुण गहलीजियो ॥ ५२ ॥
इति श्रीबानारसी नामाङ्कित ज्ञानबावनी ।

अथ वेदनिर्णयपंचासिका

चूड़ामणि छन्द।

जगतविलोचन जगतहित जगतारण जग जान।
नमहुं जगचूड़ामणी, जगनायक परधान॥
नमहुं ऋषभस्वामी प्रभुहि, जिनचौबीस महन्त।
गुरुचरण चितधारि पुनि, कहूं वेदविरतन्त॥१॥

मनहरण ((घनाक्षरी)

वे असलीकलिपिवेद अन्तर गुपत भये
जिनके शबदमें अमृतरस चुवा है।
अब ऋगुवेद यजुर्वेद साम अथर्वण,
इनही का परमान जगत में हुवा है॥
कहत 'बनारसी' तथापि मैं कहूंगा कछु,
सही समझैगो जिसका मिथ्यात्व मुवा है।
मतवारो मूरख न मानैं उपदेश जैसे,
उलूवा न जाने किसीओर भानु उवा है॥२॥

दोहा।

कहूं वेदपंचासिका जिनवाणी परमान।
पर अजान जानैं नहीं जो जानै सो जान॥३॥
आदिनाथ 'पुरमरिविन्द' रूप चतुर्मुख धार।
समवसरण मैदानमें 'वेद' बखानैं चार॥४॥

घनाक्षरी ।

प्रथम पुनीत 'प्रथमानुयोगवेद' जामें,
त्रेसठशलाका महापुरुषों की कथा है ।
दूजो वेद 'करणानुयोग' जाके गरभ में,
बरनी अनादि लोकालोक थिति जथा है ॥
'चरणानुयोग' वेद तीसरो प्रगट जानें,
मोक्षपंथकारण आचार सिधु मथा है ।
चौथोवेद 'दरव्यानुयोग' जामें दरबके,
षटभेद करम उछेद सरवथा है ॥ ५ ॥

प्रथमवेद यथा —

षट्पद ।

'तीर्थंकर' चौबीस, 'काम चौबीस अतुलतन ।
'जिनमाता जिनपिता, सकल ब्यालीसआठ गन ॥
'चक्रवर्ति' द्वादश प्रमान, एकादश 'शंकर' ।
नव 'प्रतिहर' नव 'वासुदेव, नव 'राम' शुभंकर ॥
'कुलकर' महन्त चवदह पुरुष, नव 'नारद' इत्यादि नर ।
इनको चरित्र अरु गुणकथन, 'प्रथमवेद' यह भेद धर ॥६॥

द्वितीयवेद यथा —

अगम अनंत अलोक, अकृत अनिमित अखंड सम ।
असंख्यातपरदेश, पुरुषआकार लोक नभ ॥
उरध स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यभुव ।
शेष असंख्य उदधि, असंख मंडलाकार ध्रुव ॥

तिस मध्य अढ़ाई दीपजग, पंचमेरु सागर जुगम।
यह मनुजक्षेत्र परिमाण थिति सुरविद्याधरको सुगम ॥७॥

मनहरण।

सोलह सुरग नवग्रीव नव नवोत्तर,
पंच पंचानुत्तर ऊपर सिद्धशिला है।
ता ऊपर सिद्धक्षेत्र जहाँ हैं अनन्तसिद्ध,
एकमैं अनेक कोऊ काहूसौं न मिला है॥
अधोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
नीचे सात नरकनिवास बहु बिला है।
इत्यादि जगतथिति कही 'पूर्वभेद' माहि,
सोई जीव मानें जिन मिथ्यात्व गिला है ॥८॥

गुणीभेद यथा –

मिथ्यामतभूमि नामी सासादन रीति भासी
मिश्रगुणथानककी ठानी थिति करनी।
सम्यकदरशन सार अव्रतो नानापरकार
श्रावकआचार गुन एकदश धरनी॥
परमादीमुनिकी क्रिया कही अनेकरूप,
मादी मुनिराजकी क्रिया प्रमादहरनी।
चारित्रकरन त्रिधा श्रेणिधारा दुविधा है,
एक पापमुखी एक मोक्षमुखी धरनी॥ १०॥

चौपाई।

उपशम क्षिपक यथाख्यात चारित परमक अनुमानप्रत्यक्षभरित।
त्रिविधि विविधि धर्मविधि आचार तेरह विधि सम्य परकार॥११॥

दोहा ।

वरनन मत्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनत ।
समाचार गुणकथन यह, 'तृतीयवेद' विरतंत ॥ १२ ॥

'चतुर्थवेद' यथा—रूपक घनाक्षरी ।

जीव पुदगल धर्म, अधर्म आकाश काल,
येहो छहों दरब, जगत के धरनहार ।
एक एक दरवमें, अनत अनंत गुन,
अनत अनत परजायके करनहार ॥
एक एक दरवमे, शकति अनत वसै,
कोऊ न जनम धरै कोऊन मनहार
निहचे निवेद कर्मभेद चौथेवेद माहिं,
वखानै सुगुरु मानै मोहको हरनहार ॥ १३ ॥

चौपाई ।

येही चारवेद जगमाहिं । सर्व ग्रन्थ इनकी परछांहिं ॥
ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद । त्यों त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १

दोहा ।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद ।
ते किन कीन्हें कब भये, सो सब वरनों भेद ॥ १५ ॥
युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति वखान ।
"ऋषभदेव ब्रह्मा" कथा, सुनहु भविक धर कान ॥ १६ ॥

"युगलधर्म यथा"—चौपाई ।

प्रथमहिं "जुगलधर्म" है जैसा । गुरुपरसाद कहहुँ कछु तैसा
जन्महिं जुगलनारिनर दोऊ । भाई बहिन न मानै कोऊ ॥ १७ ॥

मनहरण ।

जिनके सकल सकलय विपनय भोग,
भोगें सुरतरुसम अलपअसंबरा ।
जिनके न कोउ अरि रोग न शरीर भार,
विपतिकी दशा और विपति न पेखना ॥
जिनके थिते तीन पल्योपमतीन आव,
सबै नर राय चाऊ काहूको न सेवना ।
ऐसे भद्रमानुष जुगल अवतार पाय,
करि करि भोग मरि मरि होहि देवता ॥ २२ ॥
जिनके जनम माहि मातपिता मर जाहि,
व्यापै न वियोग दुख शोक नहि धरना ।
अपने अँगूठाको अमृतरसपान कर,
जिनको अपनो तन वर्द्धमान करना ॥
अन्तकाल जिनको असातावेदनी न होय,
छींक आये अथवा जंभाई आये मरना ।
जिनको शरीर खिर जाय ज्यों कपूर उड़ै,
ऐसो जिनवानीमे 'जुगलधर्म' वरना ॥ २३ ॥

चौपाई ।

जुगलधर्म जव लेय मरोरा । वाकी काल रहै कछु थोरा ॥
प्रगटहि तहा चतुर्दशप्रानी । "कुलकर नाम कहावैं ज्ञानी ॥ २४ ॥
सब सुजान सबकी गति नीकी । सब शका मेटहि सबजीकी ।
होहिं विछिन्न 'कल्पतरु ज्यों ज्यों । 'कुलकर' आगम आपहि त्यों त्यों ॥

दोहा ।

कह्यो सबनि मरि मरि जनम, हरि हरि भाँति कराल ।
धरि धरि तन मरि मरि गये करि करि पूरण काल ॥ २६ ॥
इहिविधि बरतइ मनु भये कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ग्राम संयुक्त सब, मति मति अवधि रसाल ॥ २७ ॥

चौपाई ।

तेरह मनुके नाम सु भाने । नाभिराय चौदहें बखाने ॥
मरुदेवी तिनकी बरनारी । शीलवंत सुन्दरि सुकुमारी ॥ २८ ॥
ताके गर्भ भये अवतारी । ऋषभदेवजिन समकितधारी ।
तीनज्ञान संयुक्त सुहाये । भगवत नाम जगतमें गाये ॥२९॥

ऋषभदेव कथनः—

दोहा ।

"ऋषभदेव" जे जे दशा धरीं किये जे काम ।
ते ते यथगर्भित भये प्रगट जगतमें नाम ॥ ३० ॥
जे "प्रजाके" नाम सब जगतमाहिं विख्यात ।
ते गुरुसों करथुतिसों, "ऋषभदेव" की बात ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जनमत नाम भयो शुभवेला । 'आदिपुरुष' अवतार अकेला ॥
मातापिता नाम जब राखा । 'ऋषभकुमार' जगत सब भाखा ॥३२॥
"नाभि" नाम "राजा" के जाये । 'नाभिकुमारऋषभ' कहाये ।
इन्द्र नरेन्द्र करैं जब सेवा । तब कहिये "देवनको देवा" ॥३३॥

जुगलरीति तज नीति उधरता। तातैं कहैं सृष्टिके "करता"।
असिमसिकृषिवाणिजके दाता। ताकारण "विधि"नाम 'विधाता'॥
क्रियाविशेष रचीं जग जेती। जगत "विरञ्चि" कहैं प्रभु सेती॥
जुग की आदि प्रजा जब पालें। जब जग नाम "प्रजापति" आलें।३५

दोहा।

कियो नृत्य काहू समय, नटी अप्सरा वाम।
जगत कहै ब्रह्मा रचो, तिय "तिलोत्तमा" नाम॥ ३६॥

चौपाई।

गुरुविन गये महामुनि जब हीं। नाम "स्वयंभू" प्रगटो तबहीं॥
ध्यानारूढ परमतप सार्धै। "परमइष्ट" कह जगत अराधैं॥३७॥
"भरतखंडके" प्राणी जेते। प्रजा "भरतराजा" के तेते।
"भरतनरेश" "ऋषभ" की साखा। तातैं लोक 'पितामह' भाखा।३८
केवलज्ञानरूप जब होई। तब "ब्रह्मा" भाषै सब कोई।
कंचनगढगर्भित जग भासै। नाम "हिरण्यगर्भ" परकासै॥ ३९॥

दोहा।

कमलासनपर वैठिके। देहिं धर्म उपदेश।
चमर छत्र लख जग कहै। "कमलाशन" लोकेश॥ ४०॥

चौपाई।

आतमभूमि रूप दरसावै। तबहिं "आत्मभू" नाम कहावै॥
सकलजीवकी रक्षा भाखैं। नाम "सहस्रपातु" जग राखै॥ ४१॥
समवसरनमहिं चौमुखि दीसै। "चतुरानन" कह जगत अशीसै॥
अक्षरविना "वेद" धुनि भासै। रचना रच "गणधर" परगासै।४२।

'बारदेव" कहिये तब सेती । द्वादशांगकी रचना पढी ॥
तब पुनि मुनि अनंतता गहिये । तब प्रभु "अनंतातमा कहिये ॥४३॥
"धर्मनाथआदीश्वर" सोई । आदि अमरजिन कहिये सोई ॥
करे जगत इनहीकी पूजा । ये ही "ब्रह्मा" और नहिं दूजा ॥४४॥
सबसों बीज सुधम्मग दीरे । सबसों जाने "ब्रह्मा" औरै ॥
जब "समकित" नैननसों सूझै । "ब्रह्मा ऋषभदेव" तब बूझै ॥४५॥

दोहा ।

'आदीश्वर ब्रह्मा" भये किय 'वेद' जिन चार ।
नामभेद भवभेदसों कही जगतमें रार ॥ ४६ ॥

ब्रह्मलोक कथनः—

चौपाई ।

और कछि मेरे मन भावै । सांचीभाव सबनको भावै ॥
"ब्रह्मा ब्रह्मलोक"के वासी । सो वृत्तान्त कहों परकासी ॥४७॥

कुण्डलिया ।

ऊपर सब सुरलोक के, "ब्रह्मलोक" अभिराम ।
सो "सरवारथसिद्धि" वसु, पंचानुत्तर" नाम ॥
पंचानुत्तर नाम, धाम एक अवतारी ।
तहां पूर्वभव बसे ऋषभजिन समकितधारी ॥
'ब्रह्म लोकसों चये भये "ब्रह्मा" इहि भूपर ।
तातैं लोक बखान देव "ब्रह्मा" सब ऊपर ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

"आदीश्वर" युगादि शिवगामी । तीनलोकअन्तरजामी ॥
ऋषभदेव ब्रह्मा जगस्वामी । जिन सब जीवधर्मविधि भाखी ॥ ४९ ॥

ऋषभदेवके अगनितनाऊ । कों कहा लौं पार न पाऊ
ये अगाध मेरी मति हीनी । तातें कथा समापत कीनी

षट्पद ।

हरिविधि अला भये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि ।
रूप चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि ॥
तिनके नाम अनंत, ज्ञानगर्भित गुनगूके
मैं तेते वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे ॥
यह "शब्दनामसागर" अगम, परमब्रह्म गुणजलसहित ।
किमि लहै "बनारसि" पार पद, नर विवेक भुजबलरहित ॥ ५

इति वेदनिर्णयपंचासिका

अथ त्रेशठशलाकापुरुषोकी नामावली

वस्तुछन्द ।

नमो "जिनवर" नमो जिनवरदेव चौवीस ।
नरद्वादश "चक्रधर" नव "मुकुन्द" नव "प्रतिनारायण" ।
नव "हलधर" सकल मिलि, प्रभु त्रेशठ शिवपथपरायण ॥
ए महत त्रिभुवनमुकुट, परमधरमधनधाम ।
ज्यों ज्यों अनुक्रम अवतरे, त्यों त्यों वरनौं नाम ॥ १ ॥

सोरठा ।

केई तद्भव सिद्ध, निकटभव्य केई पुरुष ।
मृषागाठि उरविद्ध, सुमति शलाकाधर सकल ॥ २ ॥

वस्तुछन्द ।

"ऋषभजिनवर" ऋषभजिनवर "भरतचक्रीश ।
"श्रीअजित जिनेश" हुव, सगर" चक्रि "संभवतीर्थंकर" ।
"अभिनंदन सुमति" जिन, "पद्मप्रभ सुपास तीर्थंकर" ॥
"श्रीचन्द्रप्रभु सुविधि" जिन "शीतल" जिन "श्रेयांश ।
"अश्वग्रीव" प्रतिहर भयो, "हलधर विजय" सुवंश ॥ ३ ॥

सोरठा ।

हरि "त्रिपृष्टि" जिन वार, "वासुपूज्य जिन द्वादशम ।
"तारक" प्रतिहरि वार हलधर "अचल द्विपृष्टि" हरि ॥ ४ ॥

वस्तुछन्द ।

विमल" जिनवर विमल जिनवर "मेरु" प्रतिविष्णु ।
धर्म "धर्म स्वयंभू" हरि, जिन "अनंत मधु" प्रतिवासोदर ।
बल "सुप्रभ" नाम हुव, "पुरुषोत्तम" हरि वसु सोदर ॥
"धर्म" जिनेश "निशुंभ" प्रति माधवपद नरेस ।
राम "सुदर्शन" नाम हुव हरि "नरसिंह नरेस ॥ ५ ॥

सोरठा ।

"मघव" नाम चक्रेश चक्री "सनत्कुमार" हुव ।
चक्री "शांति" नरेश, भयहु "शांति जिन शांतिकर ॥ ६ ॥

वस्तुछन्द ।

"कुंथु" चक्री "कुंथु" चक्री "कुंथु" सर्वेश ।
"अर" सार्वभौम हुव "अर" जिनेश "मदसार" प्रतिहरि ।

वलभद्र "सुनदि" हुव, "पुंडरीक" हरि बंधु तासु घर ॥
सार्वभौम "सुभौम" हुव, 'वलि" प्रतिहरि अवतार ।
"नन्दिमित्र" वलदेव हित, केशव "दत्तकुमार" ॥ ७ ॥

सोरठा ।

"पद्म" चक्रि जिन "मल्लि, विजयसेन" पटसहजित ।
"मुनिसुव्रत" हरि अल्लि, चक्रवर्ति "हरिषेण" हुव ॥ ८ ॥

वस्तुछन्द ।

भयहु "रावण" भयहु रावणनाम प्रतिकृष्ण ।
रघुनन्दन 'राम" हुव, वासुदेव "लक्ष्मण" गणिजै ।
"नमि" जिनवर "नेमि" जिन, "जरासंध" प्रतिहरि भणिजै ॥
हलधर "पदम मुरारि" हरि, "ब्रह्मदत्त" चक्रीस ।
पास जिनेसुर "वीर" जिन, नर तीनत्रिषीस ॥ ९ ॥

सोरठा ।

त्रिभुवनमाहिं उदार, त्रेशठ पद उत्कृष्ट जिय ।
भाविभूत उपचार, वन्दै चरण "वनारसी ॥ १० ॥

तीर्थंकर नामावली —षट्पद ।

ऋषभ अजित संभव जिनद सुमति धर ।
श्रीपद्मप्रभ श्रीसुपास, चन्द्रप्रभ जिनवर ॥
सुविधिनाथ शीतल श्रेयासप्रभु वासुपूज्य धर ।
विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन कुंथुनाथ अर ॥
प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक, मुनिसुव्रत नमि नेमि नर ।
पारस जिनेश वीरेश पद, नमति "वनारसी" जोर कर ॥११॥

चक्रवर्तिनाम—दोहा।

भरत सगर मघवा सनत—कुँवर शांति कुंथेश।
अर सुभौम पदमारथी, जय हरिषेण ब्रह्मेश ॥ १२ ॥

प्रतिनारायण नाम—दोहा।

अश्वग्रीव तारक मधू मेरु निशुंभ महाबल।
बलिराजा रावण जरा, सन्ध सुमतिहरिपाल ॥ १३ ॥

नारायणनाम—दोहा।

त्रिपिष्ट द्विपिष्ठ स्वयंभु पुरु,—षोत्तम नरसिंहेश।
पुण्डरीक दत्ताधिपति लक्ष्मण हरिमपुरेश ॥ १४ ॥

बलभद्रनाम—दोहा।

विजय अचल बल धर्मवर, सुप्रभ सुदर्शन नाम।
सुनंदि नंदिमित्रेश पुनु, भावपदम बलराम ॥ १५ ॥

इति श्रीत्रेसठशलाकापुरुषोंकी नामावली

अथ मार्गणाविधान लिख्यते

दोहा।

बन्दहु देव सुपदविमल सुमरि सुगुरु सुखमाल।
बरणहु मारगना कहूं बरणहु बासठ ख्याल ॥ १ ॥

चौपाई।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
संयम सम्य अहार कषाय। दरशन ज्ञान जोग गति काय ॥
९ १२ १३ १४ १४
लेश्या समकित सैनी वेद। इन्द्रिय सहितचतुर्दशभेद ॥ २ ॥

ए चौदह मारगणा सार । इनके बासठ भेद उदार ॥
बासठ ससारी जिय भाव । इनहिं उलघि होय शिवराव ॥ ३ ॥
सजम सात भव्य द्वै भाय । द्विविधि अहारी चार कपाय ।
दर्शन चार आठविधि ज्ञान । जोग तीन गति चारविधान ॥ ४ ॥
षट काया लेश्या षट होय । षट समकित सैनीविधि दोय ॥
वेद तीनविधि इन्द्रिय पच । सकल ठीक गति बासठ सच ॥ ५ ॥
इनके नाम भेद विस्तार । वरणहुं जिनवानी अनुसार ।
बासठरूप स्वाग धर जीव । करै नृत्य जगमाहिं सदीव ॥ ६ ॥
प्रथम असंजम रूप विशेष । देशसजमी दूजो भेष ॥
तीजो सामायिक सुखधाम । चौथा छेदउथापन नाम ॥ ७ ॥
पचम पद परिहारि विशुद्धि । सूक्षम सापराय षट बुद्धि ॥
जथाख्यात चारित सातमा । सातों स्वाग धरै आतमा ॥ ८ ॥
भव्य अभव्य स्वाग धर दुधा । करै जीव जग नाटक मुधा ॥
अनहारक आहारी होय । नाचै जीव स्वाग धर दोय ॥ ९ ॥
कबहू क्रोध अगनि लहलहै । कबहू अष्ट महामद गहै ॥
कबहू मायामयी सरूप । कबहूं मगन लोभ रसकूप ॥ १० ॥
चार कषाय चतुर्विध भेष । धर जिय नाटक करै विशेष ॥
कहू चक्षुदर्शनसों लखै । अचक्षुदर्शनसों चखै ॥ ११ ॥
कहू अवधि दर्शन सु प्रयु ज । कहू सुकेवलदरशन पुज ॥
धर दर्शन मारगणा चारि । नाटक नटै जीव ससारि ॥ १२ ॥
कुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन । कुश्रुति कुआगम में परवीन ॥
धरै विभगा अवधि अजाम । सुमति ज्ञान समकित परवान ॥ १३ ॥

थावरमाहिं इकेन्द्री होय। त्रस सखादिक इन्द्रिय दोय ॥ २५ ॥
पिपीलिकादिक इन्द्री तीनि। चौरिन्द्रिय जिय भ्रमरादीनि ॥
पचेन्द्री देवादिक देह। सब बासठि मारगणा एह ॥ २६ ॥
जावत जिय मारगणारूप। तावत्काल बसै भवकूप ॥
जब मारगणा मूल उछेद। तब शिव आपै आप अभेद ॥२७॥

दोहा।

ये बासठ विधि जीवके, तनसम्बन्धी भाव।
तज तनबुद्धि "बनारसी" कीजे मोक्ष उपाव ॥ २८ ॥

इति बासठ मार्गणा विधान

अथ कर्मप्रकृतिविधान

वस्तुछन्द।

परमशंकर परमशंकर, परमभगवान्
परब्रह्म अनादि शिव, अज अनंत गणपति विनायक।
परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेशदायक ॥
इत्यादिक बहु नाम धर जगतवंद्य जिनराज।
जिनके चरण "बनारसी" वंदै निजहितकाज ॥ १ ॥

दोहा।

नमों केवली के वचन, नमों आतमाराम।
कहौं कर्मकी प्रकृति सब, भिन्न भिन्न पद नाम ॥ २ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

एकहि करम आठविधि दीस। प्रकृति एकसौ अड़तालीस॥
तिनके नाम भेद विस्तार। वरणाउं जिनभाषी अनुसार॥ ३॥
प्रथमकर्म "ज्ञानावरणीय"। जिन सब जीव अज्ञाना कीय॥
द्विविध "दर्शनावरण" पहार। जाकी ओट अलख करतार॥ ४॥
तीजा कर्म "वेदनी" जान। तासौं निराबाध गुणहान॥
चौथा "महामोह" जिन भनै। जो समकित अरु चारित हनै॥५॥
पंचम "आयुकरम" परवान। हनै शुद्ध अवगाहमान।
छट्ठा "नामकर्म" विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत॥ ६॥
"गोत्र" कर्म सातमों बखान। जासौं ऊंच नीच कुल मान॥
अष्टम "अन्तराय" विख्यात। करै अनन्तशक्तिको घात॥ ७॥

दोहा।

एही आठौं करममल इनमें गर्भित जीव।
इनहि त्याग निर्मल भयो सो शिवरूप सदीव॥ ८॥

चौपाई।

कहो कर्मवत जास सरीस। प्रकृति एकसौ अड़तालीस॥
"मतिज्ञानावरणी" जा कर्म। सो आवरि राखै मतिधर्म॥ ९॥
"श्रुतिज्ञानावरणी" जब जहां। श्रुतभुतज्ञान पुरै नहिं तहां॥
"अवधिज्ञान आवरण" उदोत। जिसको अवधिज्ञान नहिं होत॥१०॥
"मनपरजय आवरण" प्रमान। नहिं उपजै मनपर्जय ज्ञान॥
"केवलज्ञानावरणी" कूप। तामहिं गर्भित केवलरूप॥ ११॥

वरणी ज्ञानावरणकी प्रकृति पंचपरकार।
अब दर्शन आवरण तरु, लखहु तासु नव डार॥ १२॥

"चक्षुदर्शनावरणी" बंध । जो जिय करै होहि सो अंध ।
"अचखुदर्शनावरण" बंधेव । शबद फरस रस गंध न वेव ॥ १३ ॥
"अवधिदर्शनावरण" उदोत । विलल अवधिदर्शन नहिं होत ॥
"केवलदर्शआवरण" जहां । केवलदर्शन होय न तहां ॥ १४ ॥
"त्यानगृद्धि" निद्रावश परै । सो प्राणी विशेष बलधरै ॥
उठि उठि चलै कहै कछु बात । करै प्रचंड कर्मउतपात ॥ १५ ॥
"निद्रानिद्रा उदय स्वकीय । पलक उघाड सकै नहिं जीव ॥
"प्रचलाप्रचला" जावतकाल । चंचल अंग बहै मुख लाल ॥ १६ ॥
"निद्रा" उदय जीव दुख भरै । उठ चालै बैठे गिरि परै ॥
रहै आंख "प्रचलासों" घुली । आधी मुद्रित आधी खुली ॥ १७ ॥
सोवतमाहिं सुरति कछु रहै । बारवार "लघु निद्रा" गहै ॥
इति "दर्शनावरणि" नवधार । कहौं वेदनी द्वयपरकार ॥ १८ ॥

दोहा ।

"साता" करम उदोतसों जीव विषयसुख वेद ।
करम "असाताके" उदय, जिय वेदै दुख खेद ॥ १९ ॥

चौपाई ।

अब मोहनी दुविधि गुरुभनै । इक दरशन इक चारित हनै ॥
दर्शनमोह तीन विधि दीस । चारितमोह विधान पचीस ॥२०॥
प्रथम मिथ्यातमोह की दौर । जिय सरदहै और की और ॥
दूजी मिश्रमोह की चाल । सत्य असत्य गहै समकाल ॥ २१ ॥
समकितमोह तीसरी दशा । करै मलिन समकित की रसा ॥
अब कषाय सोलहविधि कहौं । नोकषाय नवविधि सरदहौं ॥२२॥

प्रथमकषाय कहावै कोप। जाके उदय हिंसागुण होय।
द्वितियकषाय मान परचंड। विनय विनाश करै शतखंड ॥२३॥
तीजी माया रूप कषाय। जाके उदय सरलता जाय॥
लोभ कषाय चतुर्थमभेद। जासु उदय संतोष उछेद ॥ २४ ॥

दोहा।

ये ही चारकषाय मल, अनुक्रम सूक्षम थूल।
चारों कीजे चौगुने, अप्रख्या समतूल ॥ २५ ॥

अनन्तानुबन्धीय कषाय। जाके उदय न समकित भाय॥
अप्रत्याख्यानिया उदोत। पंचमगुणघातक नहिं होत ॥२६॥
प्रत्याख्यान कहावै सोय। जहां सर्वसंयम नहिं होय॥
सो संज्वलन नाम गुरु भनै। यथाख्यातचारित जो हनै ॥२७॥
क्रोध मान माया अरु लोभ। चारों चारप्रकारविधि शोभ॥
ए कषाय सोलह दुखधाम। अब नव नोकषाय के नाम ॥ २८ ॥
रागद्वेषकी हांसी जोय। हास्य कषाय कहावै सोय॥
सुखमैं मगन होय चित जहां। रति कषाय रस बरसै तहां ॥२९॥
जहां जीवको कछु न सुहाय। तहां मानिये अरति कषाय॥
अरहर करै आतमराम। जासहिं सो कषाय भय नाम ॥३०॥

स्वजन मिलाप वियोग दुख जहां होय सो सोग।
जहां ग्लानि मन ऊपजै सो दुर्गंछा रोग ॥ ३१ ॥

मगर दाह सम परगट दीस। गुप्त पजावा अग्नि सरीस॥
महा अशुभता धरैं सवीन। वेद नपुंसकधारी चीन ॥ ३२ ॥

अब वरनों तियवेदकी, रचना सुनि गुरु भाष।
कारीसाकीसी अगनि, गर्भित छल अभिलाप ॥ ३३ ॥

ज्यों कारीसाकी अगनि, धुआँ न परगट होय।
सुलग सुलग अन्तर दहै, रहै निरन्तर सोय ॥ ३४ ॥

त्यों वनितावेदी पुरुष, बोले मीठे बोल।
बाहिर सब जग वश करै, भीतर कपटकलोल ॥ ३५ ॥

कपट लपटसों आपको, करै कुगतिके वध।
पाप पंथ उपदेश दे, करै औरको अध ॥ ३६ ॥

आपा हत औरन हतै, वनितावेदी सोय।
अब लच्छण ताके कहो, पुरुष वेद जो होय ॥ ३७ ॥

ज्यों तृण पूलाकी अगनि दीखै शिखा उतग।
अलपरूप आलाप धर, अलपकालमें भंग ॥ ३८ ॥

तैसैं पुरुषवेद धर जीव। धर्म कर्ममें रहै सदीव ॥
महामगन तप संजम माहिं। तन तावै तनको दुख नाहिं ॥ ३९ ॥

चित उदार उद्धत परिणाम। पुरुषवेद धर आतमराम ॥
तीन मिथ्यात पचीस कषाय। अट्ठाईस प्रकृति समुदाय ॥ ४० ॥

अब सुन आयु चार परकार। नर पशु देव नरक थिति धार।
मानुष आयु उदय नर भोग। लह तिरजच आयु पशु जोग ॥४१॥

देव आयु सुरवर विख्यात। नरक आयुसों नरक निपात ॥
वरनी आयुकर्मको वान। नामकर्म अब कहौं बखान ॥४२ ॥

पिंड प्रकृति चौदह परकार। अट्ठाईस अपिंड विस्तार ॥
पिंडभेद पैंसठ परशस्त। मिलि तिराणवै होहि समस्त ॥ ४३ ॥

ते तिराणवे कहूं बखान । पिंड अपिंड वियालिस जान ॥
प्रथमपिंड प्रकृती गतिनाम । सुर नर पशु नारक दुखधाम ॥४४॥

सोरठा ।

सुरगतिसों सुर देह, नरशरीर नरगति उदय ।
पशुगतिसों पशुदेह नरक बसावै नरक गति ॥ ४५ ॥

चौपाई ।

चहु गति आनुपूरवी चार । द्वितिय पिंड प्रकृती अवधार ॥
मरण समय तज देह स्वकीय । परभव गमन करै जब जीव ॥४६॥
आनुपूरवी प्रकृति सिरेरि । भाविगति में आनैं घेरि ॥
आनपूरवी होय सहाय । गहै जीव नूतन परजाय ॥ ४७ ॥
तृतिय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार । इग दुग तिग चहु पंच विचार ॥
फरस रसन नासा दृग कान । जथाजोग जिय नाम बखान ॥४८॥
तन इन्द्रिय जाकै जो कोय । मुख नासा दृग कान न होय ॥
सो एकेन्द्रिय थावर काय । भू जल अगनि वनस्पति वाय ॥४९॥
जाके तन रसना दुय थोक । संख गिंडोला जलचर जोंक ॥
इत्यादिक जो जंगम जन्त । तेई बेंद्री कहे सिद्धन्त ॥ ५० ॥
जाके तन मुख नाक हजूर । घुन पिपीलिका कनखजूर ॥
इत्यादिक तेइन्द्रिय जीव । आंख अनसों रहत सदीव ॥ ५१ ॥
जाके तन रसना नासा आंखि । बिच्छू भ्रमर टीड मखि माखि ॥
इत्यादिक जे आतमराम । ते जगमैं चौइंद्री नाम ॥ ५२ ॥
देह रसन नासा दृग कान । जिनके ते पंचेंद्री जान ॥
नर नारकी देव तिरजंच । इन चारहुके इन्द्री पंच ॥ ५३ ॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार । औदारिक वैक्रियक आहार ॥
तैजस कार्माण मिल पंच । औदारिक मानुष तिरजंच ॥ ५४ ॥
वैक्रिय देव नारकी धरै । मुनि तपबल आहारक करै ॥
तैजस कार्माण तन दोय । इनको सदा धरैं सबकोय ॥ ५५ ॥
जैसी उदय तथा तिन गही । चौथी पिंड प्रकृति यह कही ॥
अब बंधन संघातन दोय । प्रकृति पंचमी छठवीं सोय ॥ ५६ ॥
बंधन उदय काय बंधान । संघातनसौं दिढ संधान ॥
दुहुँकी दश शाखा द्वय खंध । जथाजोग काया सबंध ॥ ५७ ॥
अब सातमी प्रकृति परसंग । कहौं तीन तन अंग उपंग ॥
औदारिक वैक्रियक अहार । अं ग उपंग तीन तनधार ॥ ५८ ॥

दोहा ।

सिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पद टेक ।
आठ अंग ये तनविषै, और उपंग अनेक ॥ ५९ ॥

तैजस कार्माण तन दोय । इनके अंग उपंग न होय ॥
कहहु आठमी प्रकृति विचार । षट् संस्थान रूप आकार ॥ ६० ॥
जो सर्वंग चारु परधान । सो है समचतुरस्र संठान ॥
ऊपर थूल अधोगत छाम । सो निगोधपरिमंडल नाम ॥ ६१ ॥
हेट थूल ऊपर कृश होय । सातिक नाम कहावैं सोय ॥
कूबर सहित वक्र वपु जासु । कुब्जक आकार नाम है तासु ॥६२॥
लघुरूपी लघु अंग विधान । सो कहिये वामन संठान ॥
जो सर्वंग असुंदर भुंड । सो संठान कहावै हुंड ॥ ६३ ॥
कही आठमीप्रकृति छभेद । अब नौमी संहनन निवेद ॥
है संहनन हाड़को नाम । सो षटविधि थंभै तन धाम ॥ ६४ ॥

वज्र कील कीलित संधान। ऊपरि वज्रपट्ट बंधान ॥
अंतर हाड़ वज्रमय जान। सो है वज्रवृषभनाराच ॥ ६५ ॥
जहँ सब हाड़ वज्रमय होय। वज्रमेल सो अविचल होय ॥
ऊपर वेठरूप सामान। नाम वज्रनाराच बखान ॥ ६६ ॥
वज्र समान होहिं जहँ हाड़। ऊपर वज्ररहित पट आड़ ॥
वज्ररहित कीलीसों मिद्ध। सो नाराच नाम परसिद्ध ॥ ६७ ॥
जाके हाड़ वज्रमय नाहिं। अर्द्ध वेध कीली मसमाहिं ॥
ऊपर वेठबंधन नहिं होय। अर्द्धनराच कहावै सोय ॥ ६८ ॥
जहाँ न होय वज्रमय हाड़। नहिं पटबंधन कीली गाढ़ ॥
कीली बिन विद्ध बंधन होय। नाम कीलिका कहिये सोय ॥ ६९ ॥
जहाँ हाड़सों हाड़ न बंधै। असिद्ध परस्पर संधि न संधै ॥
ऊपर नसाजाल अरु चाम। सो सेवट संहनन नाम ॥ ७० ॥
ये संहनन षट्विधि बरनई। नवमी प्रकृति समापति भई ॥
दशमी प्रकृति गमन आकारा। ताके दोय भेद परकारा ॥ ७१ ॥

दोहा।

शुभविहाय गतिके उदय, भली चाल सिव धार।
अशुभविहाय उदोतसों ठानै अशुभ विहार ॥ ७२ ॥

पद्धरिछन्द।

अब कहूं ग्यारमी प्रकृतिसंच। जो वरणभेद परकार पंच ॥
सित अरुण पीत दुति हरित श्याम। ये वर्ण प्रकृति के पंच नाम ॥
जा वर्णप्रकृति जाके उदोत। ताके शरीर तिह वर्ण होत ॥
रस नाम प्रकृति बारमी जान। सो पंचभेद जिनराज बखान ॥७३॥

कटु मधुर तिक्त आमल कषाय । रसउदय रसीली होय काय
जाको जो रस प्रकृती उदोत । ताके तन तैसो स्वाद होत ॥७५
तेरहीं प्रकृति गँधमयी होय । दुर्गंध सुगन्ध प्रकार दोय ॥
जो जीव जो प्रकृति करै बंध । तिह उदय तासु तन सोह गंध ॥७
अब फरस नाम चौदवीं बानी । तिस कहों आठ शाखा बखानि
चीकनी रुक्ष कोमल कठोर । लघु भारी शीतल तप्त जोर ॥७७

दोहा ।

प्रकृति चीकनीके उदय, गहै चीकनी देह ।
रूखी प्रकृति उदोतसों, रुखीकाया नेह ॥ ७८ ॥
कठिन उदयसों कठिन तन, मृदु उदोत मृदु अंग ।
तपत उदयसों तपततन, शीतउदय शीतंग ॥ ७९ ॥

पद्धरिछन्द ।

जहँ भारी नाम परकृति उदोत । तहँ भारी तनधर जीव होत ॥
लघुप्रकृति उदयधर जीव जोय । अति हरुई काया धरै सोय ॥८०
ए पिंडप्रकृति दशचार भाखि । इनहीं की पैंसठ कही साखि ॥
अब अठ्ठावीस अपिण्ड ठानि । तिनके गुणरूप कहों बखानि ॥८
जब प्रकृति अगुरुलघु उदय देय । तब जीव अगुरुलघु तन धरेय
उपघात उदय सो अंग व्याप । जासों दुख पावै जीव आप ॥८२
परघात उदयसों होय अंग । जो करै औरको प्राण भंग ॥
उस्सासप्रकृति जब उदय देय । तब प्राणी सास उसास लेय ॥८३
आतप उदोत तन जथा भान । उद्योत उदय तन शशि समान ॥
त्रस प्रकृति उदय धर जीव जोय । जंगम शरीरधर चलै सोय ॥८४

बादर उदोतधर भानुधार । यदि थिर शरीर न करै विकार ॥
सूक्षम उदोत लघु देह वास । सो मारे मरे न और पास ॥८५॥
बादर उदोत तन थूल होय । सबही के मारे मरै सोय ॥
परजापति प्रकृति उदय करंत । जिय पूरी परजापति धरंत ॥८६॥
जो प्रकृति अपर्जापत करेय । सो पूरी परजापत न लेय ॥
प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत । सो जीव वनस्पति काय होत ॥८७॥
फल फुल्ल काठ फल पूल पात । जहँ जीव सहित बिकटासिसाव ॥
जो एक देहमें जीव एक । सो जीवराशिकहिये प्रत्येक ॥ ८८ ॥
प्रत्येक वनस्पति द्विविधिजान । सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित बखान ॥
जो धारे राशि अनन्तकाय । सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय ॥८९॥
जामें नहिं होय निगोदधाम । सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम ॥
अब साधारणवनस्पति काय । सो सूक्षम बादर द्विविधि थाय ॥९०॥
सूक्षम निगोद जगमें असेय । बादर पद दूजा आमपेय ॥
धरि भिन्न भिन्न कार्माण काय । मिलि जीव अनन्त इकत्र थाय ९१
संभवहि एक जो कर्म देह । तिस कारण नाम निगोद यह ॥
सो पिंड निगोद अनन्तरास । त्रिपरूप अनंतानंत भास ॥९२॥
भर रहे लोकनभमें सदीव । ज्यों घड़ामाहिं भर रहे घीव ॥
सूक्षम अरु बादर दाय साव । पुनि नित्य अनित्य दुभेद भाव ॥९३॥
जो गोलकरूपी पंचधाम । अंडर-खंडर इत्यादि नाम ॥
ते साधारणके देह धाम । पुनि सकललोकनभमें बखान ॥९४॥

दोहा ।

एक निगोद शरीरमें जीव अनंत अपार ।
धरें जन्म सब एकठे मरहिं एक ही बार ॥ ९५ ॥

मरण अठारह वार कर, जनम अठारह चेव ।
एक श्वास उस्वासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ६६ ॥
एक निगोदशरीरमें, एते जीव बखान ।
तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ६७ ॥
बढ़ै न सिद्ध अनंतता, घटै न राशि निगोद ।
जैसेके तैसे रहैं, यह जिनवचनविनोद ॥ ६८ ॥
तातैं बात निगोदकी, कहै कहालौं कोय ।
साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ६६ ॥
यह साधारण प्रकृतिलौं, बरणी चौदह साख ।
बाकी चौदह जे रहैं, ते बरणौं सुन भाख ॥ १०० ॥

पद्धरिछन्द ।

थिरप्रकृति उदय थिरता अभंग । अस्थिर उदोतसों अथिर अंग ॥
शुभप्रकृति उदय शुभरीति सर्व । जहँ अशुभउदय तहँ अशुभपर्व॥१॥
सौभागप्रकृति जाके उदोत । सो प्राणी सबको इष्ट होत ।
दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव । सबको अनिष्ट लागै सदीव ॥ २ ॥
जहँ सुस्वरप्रकृति उदय बखान । तहँ कंठ कोकिला मधुरबान ॥
जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार । ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥ ३ ॥
आदेयप्रकृति जाके उदोत । ताको बहु आदर मान होत ॥
जब अनादेय को उदय होय । तब आदर मान करै न कोय ॥४॥
जसनामउदय जिस जीव पाहिं । ताकी जस कीरति जगत माहिं ॥
जहँ प्रगट भालमह अजसरेख । तहँ अपजस अपकीरति विशेख ॥५॥
निर्माणचितेरा उदय आय । सब अंगउपग रचै बनाय ॥
तीर्थंकरनामप्रकृति उदोत । लहि जीव तीर्थंकरदेव होत ॥ ६ ॥

दोहा ।

ये तिरानवे और दश, तन सम्बन्धी जान ।
मिलहिं एकसौतीन सब होहिं नाम की थान ॥ ७ ॥

चौपाई ।

नामप्रकृति संपूरण भई । पिंड अपिंड कही जो गई ॥
पिंडप्रकृति चौदह भनि रही । तिनकी पैंसठ शाखा कही ॥ ८ ॥
अट्ठाइस अपिंड बरनई । ते सब मिलि तिरानवे भई ॥
बरनौं गोत करम सातमा । जासौं ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥
ऊंचगोत उद्योत प्रधान । होवै जीव उच्चकुलथान ॥
नीचगोत्र फल संगति पाय । जीव नीचकुल उपजै आय ॥ १० ॥

दोहा ।

गोत्रकर्मकी उभयप्रकृति, तेहू कही बखानि ।
अंतराय अब पंचविधि तिनकी कहौं बखानि ॥ ११ ॥

चौपाई ।

अंतराय अष्टम अधिकार । सो है भेद पंच परकार ॥
अंतराय तिनकी हैं चार । निश्चै एक एक विवहार ॥ १२ ॥
कहौं प्रथम निहचै की बात । जासु उदय आतमगुण घात ॥
परगुण त्याग होहि नहिं जहां । दान अन्तराय कहिं तहां ॥ १३ ॥
आतमस्वरसलाभकी हान । लाभअन्तराई सो जान ॥
जबसौं आतमभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥
बारबार न जमै उपयोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥

अष्टकर्मको करै न जुदा । वीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥
निहचै कही पच परकार । अब सुन अन्तराय विवहार ॥
छतीवस्तु कछु देय न सकै । दान अन्तराई वल ढकै ॥ १६ ॥
उद्यम करै न सपति होय । लाभ अन्तराई है सोय ॥
विषयभोग सामग्री छती । जीव न भोग कर् सकै रती ॥ १७ ॥
रोग होय कै भोग जुरै । भोगअन्तरायबल फुरै ॥
एक भोगसामग्री सार । ताको भोग जु वारवार ॥ १८ ॥
कोजे सो कहिये उपभोग । ताहू को न जुरै सजोग ॥
यह उपभोगघातकी कथा । वीरजअन्तराय सुन जथा ॥ १९ ॥
शक्ति अनत जीवकी कही । सो जगदशामांहि दब रही ॥
जगमें शक्ति कर्मआधीन । कबहूं सबल कबहू बलहीन ॥ २० ॥
तनइन्द्रियबल फुरै न जहा । वीरजअन्तराय है तहा ॥
तातें जगतदशा परवान । नय राखी भाखी भगवान ॥ २१ ॥

दोहा ।

ये वरणी व्यवहार की, अन्तराय विधि पच ॥
अन्तर बहिर विचारतें, संशय रहै न रच ॥ २२ ॥
स्याद्वाद जिनके वचन, जो मानै परमान ।
सो जानै सब नवदशा, और न कोऊ जान ॥ २३ ॥
सर्वघातिया की प्रकृति, देशघातियावान ॥
वाकी और अघातिया, ते सब कहों वखान ॥ २४ ॥

केवलज्ञानावरणी वान । केवलदरश आवरण जान ॥
निद्रा पच चौकरी तीन । प्रकृती द्वादश लीजे चीन ॥ २५ ॥

अनंतबंध अप्रत्याख्यान । प्रत्याख्यान चौक त्रिक नाम ॥
सब मिथ्या मिश्रित मिथ्यात । ए इकवीस प्रकृति सब घात ॥२६॥

दोहा ।

सर्वघातियाकी कह्यो, विराति एक बखान ।
अब बरनौं छबीसविधि, देशघातियाथान ॥ २७ ॥

चौपाई ।

केवलज्ञानावरणी बिना । बाकी चार आवरण गिना ॥
केवलदरशनावरण छोड़ । बाकी तीनौं लीजे जोड़ ॥ २८ ॥
चारभेद संज्वलनकषाय । नवविधि नोकषाय समुदाय ॥
समयप्रकृति मिथ्यात बखान । अन्तरायकी पाँचौं थान ॥ २९ ॥
ए छब्बीस प्रकृति सब भई । देशघातियाकी वरनई ॥
बाकी रही पचासी एक । ते सब कही घाति अतिरेक ॥ ३० ॥

दोहा ।

त्रिविधिगोत्र द्वय वेदनी आयु चारविधिजानि ॥
मिश्र तिरानवै नाम की, एकोत्तरशत मानि ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जे घातहिं सब आतमसर्वे । ते ही कही घातिया सर्वे ॥
जे कछु घात करहिं कछु नाहिं । देशघातिया ते इन माहिं ॥ ३२ ॥
जे न करहिं आतमगुण घात । ते अघातिया कही विख्यात ॥
अब सुन पुण्यपापके भेद । भिन्न भिन्न सब कहौं निवेद ॥ ३३ ॥

इक सातावेदनी स्वभाव । नरकआयु विन तीनों आव ॥
ऊचगोत्र मानुषगति भलि । मानुषआनुपूरवी रली ॥ ३४ ॥
सुरगति सुरानुपूरवि जान । जात पँचेन्द्री एक वखान ॥
पच शरीर पच सघात । वंधनसहित पंचसगात ॥ ३५ ॥
अग उपग तीनविधि भास । विंशति वर्ण गध रस फास ॥
पहिला समचतुरस्र सँठान । वज्रवृषभनाराच वखान ॥ ३६ ॥
भली चाल आतप उद्योत । पर परघात अगुरुलघु होत ॥
सास उसास प्रतेक प्रवान । त्रस वादर पर्यापत जान ॥ ३७ ॥
थिर शुभ शुभग सुस्वर आदेय । जसनिम्माण तीर्थंकर घेय ॥
पुण्यप्रकृतिकी अडसठ वान । पापप्रकृति अव कहों वखान ॥ ३८ ॥
सर्वघातियाकी इकवीस । देशघातिया की छब्बीस ।
ये सैतालिस प्रकृति कहीं । वाकी और कहहुं जो रहीं ॥ ३६ ॥

प्रकृति असाता नीचकुल, नरकआयु गति दोय ।
पशु नारकि इन दुहुनकी, आनुपूरवी जोय ॥ ४० ॥

चार जाति पचेन्द्री विना । पचसंहनन प्रथम न गिना ॥
समचतुरसविन पचप्रकार । वर्णादिक विंशति परकार ॥ ४१ ॥
बुरी चाल थावर उपघात । सूक्ष्म साधारण विख्यात ॥
अनादेय अपर्यात दशा । दुर्भग दुस्वर अशुभ अपजशा ॥ ४२ ॥
अथिरसमेत एकसौ वान । ए सब पापप्रकृति परवान ॥
केती बंध उदय केतीक । तिनकी वात कहों अव ठीक ॥ ४३ ॥

दोहा ।

चारबंध वरणादिमें, बाकी सोलह नाहिं ।
एक बधमिथ्यातमें, द्वै गर्भित इसमाहिं ॥ ४४ ॥

तनबंधन संघातकी प्रकृति पचदश जान ।
पंच बंध दश बंध बिन, ये अट्ठाइस जान ॥ ४५ ॥
अट्ठाइसके बंध नहिं बंध एकसौबीस ॥
इनमें दोय मिलाइये, होहिं एकसौबाईस ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

बंध उदय विशेष यह बात । एक मिथ्यात्व तीन मिथ्यात ॥
यहै दोय अधिक बरनई । प्रकृति एकसौबाइस भई ॥ ४७ ॥
अब विपाक बरनौं विधि चार । पुद्गल जीव क्षेत्र भव धार ॥
जे पुद्गलविपाककी जान । ते बासठविधि कहौं बखान ॥ ४८ ॥
पंच शरीर बंधसंघात । अंग उपंग अठारह बात ॥
षट संहनन कहौं संठान । वर्णादिक गुन बीस बखान ॥ ४९ ॥
थिर उद्योत आतप निरमान । अथिर अगुरुलघु अशुभ विधान ॥
साधारण प्रतेक उपघात । शुभ परघात सुबासठ बात ॥ ५० ॥
जीव विपाक अठत्तर गनी । द्विविधि गोत्र द्वयविधि वेदनी ॥
सर्वघात अरु देशविघात । सैंतालीस प्रकृति विख्यात ॥ ५१ ॥
तीर्थंकर बादर उस्वास । सूक्षम परजापत परकास ॥
अपरजापति सुस्वर गैन । दुस्वर अनादेय आदेय ॥ ५२ ॥
त्रस अपजस जस बादर जान । दुर्भग शुभग चाल दुयवान ॥
इन्द्री जाति पंचविधि कही । गति चारौं एती सब कही ॥ ५३ ॥

दोहा ।

जीवविपाकीकी कही प्रकृति अठत्तर ठौर ॥
क्षेत्रविपाकी अब कहौं भवविपाकिनी और ॥ ५४ ॥

आनुपूरवी चार विधि, क्षेत्रविपाकी जान।
चार आयुबलकी प्रकृति, भवविपाकिया वान ॥ ५५ ॥
घाति अघाति त्रिविधि कहे, पुण्य पाप द्वय चाक।
बध उदय दोऊ कहे वरनें चार विपाक ॥ ५६ ॥
अब इन आठों करमकी, थिति जघन्य उतकृष्ट।
कहों बात सच्चेपसों, सुनों कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

चौपाई।

ज्ञानावरणीकी थिति वीस। कोडाकोडीसागरतीस ॥
यह उत्कृष्टदशा परवान। एकमुहूर्त जघन्य वखान ॥ ५८ ॥
द्वितिय दर्शनावरणीकर्म। थिति उत्कृष्ट कहों सुन मर्म ॥
कोडाकोडी तीस समुद्र। एकमुहूरतकी थिति क्षुद्र ॥ ५९ ॥
तीजा कम वेदनी जान। कोडाकोडीतीस बखान ॥
यह उत्कृष्ट महाथिति जोय। जघन मुहूरतबारह होय ॥ ६० ॥
चौथा महामोह परधान। थिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥
सागरसत्तरकोडाकोडि। लघुथिति एकमुहूरत जोडि ॥ ६१ ॥
पञ्चम आयु कही जगदीस। उत्कृष्टी सागर तेतीस ॥
थिति जघन्य मुमुहूरतएक। यों गुरु कही विचार विवेक ॥ ६२ ॥
छट्टा नाम कर्मथिति कहों। कोडाकोडी बीस सरदहों ॥
सागर यह उत्कृष्टविधान। आठमुहूर्त जघन्य बखान ॥ ६३ ॥
गोत्रकर्म सातघा सरीस। उत्कृष्टी थिति सागरवीस ॥
कोडाकोडिकाल परमान। लघुथिति आठ मुहूरत मान ॥ ६४ ॥

जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद । तेउ न जानहिं तुमगुणभेद ॥
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंछी बोलहिं निज भाख ॥७॥

तुम जसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥
आवै पवन पदमसर होय । ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥८॥

तुम आवत भविजन मनमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाहिं ॥
ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुंओर ॥९॥

तुम निरखतजन दीनदयाल । संकटतैं छूटहिं ततकाल ॥
ज्यों पशु घेर लेहिं निशिचोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥१०॥

तू भविजन तारक किम होइ । ते चित धार तिरहिं लै तोइ ॥
यह ऐसैं करि जान स्वभाव । तिरै मसक ज्यों गर्भितवात ॥११॥

जिन सब देव किये वश वाम । तैं छिनमें जीत्या सो काम ॥
ज्यों जल करै अगनिकुलहानि । बड़वानल पीवै सो पानि ॥१२॥

तुम अनन्त गरुवा गुण लिये । क्योंकरभक्ति धरूं निजहिये ॥
ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार । यह प्रभुमहिमा अकथ अपार ॥१३॥

क्रोध निवार कियो मनशांति । कर्म सुभटजीते किहिं भांति ॥
यह पटतर देखहु संसार । नीलवृक्ष ज्यों दहै तुसार ॥१४॥

मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूप सम ध्यावहिं तोहि ॥
कमलकर्णिका बिन नहिं और । कमलबीज उपजनकी ठौर ॥१५॥

जब तुव ध्यानधरै मुनि कोय । तब विदेह परमातम होय ॥
जैसे धातु शिलातन त्याग । कनकस्वरूप धवै जब आग ॥१६॥

जाके मन तुम करहु निवास । विनश जाय क्यों विग्रह तास ॥
ज्यों महन्त बिच आवै कोय । विग्रह मूल निवारै सोय ॥१७॥

करहिं विबुध जे आतम ध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥
जैसे नीर सुधा अनुमान । पीवत विष विकारकी हान ॥१८॥
तुम भगवत विमल गुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण संदर्शी कहै ॥१९॥

दोहा ।

निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भये अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ २० ॥
सुमनवृष्टि जो सुरकरहि, हेठ बीटमुख सोहि ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, वध अधोमुख होहिं ॥ २१ ॥
उपजी तुम हिय उदधितैं वाणी सुधा समान ।
जिहि पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पदथान । २२ ॥
कहहि सार तिहु लोकको, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमे, तसु गति ऊरध होय ॥ २३ ॥
सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभुधुनि गरजित घोर ।
श्याम सुतन घनरूप लख, नाचत भविजन मोर ॥ २४ ॥
छवि हत होंहि अशोकदल, तुमभामंडल देख ।
वीतराग के निकट रह, रहत न राग विशेख ॥ २५ ॥
शीख कहै तिहुंलोकको, यह सुरदुंदुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २६ ॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित मुक्तागण छविदेत ।
त्रिविधिरूप धर मनहु शशि, सेवत नखतसमेत ॥ २७ ॥

पद्धरिछन्द ।

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम । परताप पुंज जिम शुद्ध हेम ॥
अति धवलसुजस रूपा समान । तिनके गढ तीन विराजमान ॥२८॥

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल। तिन सीसमुकुट तज देहिं माल॥
तुम चरण लगत लहलहैं प्रीति। नहिं रमहिं और जन सुमनरीति॥२९॥
प्रभुभोग विमुख तन कर्म दाह। जन पार करत भवजल निवाह॥
ज्यों माटीकलश सुपक्व होय। ले भार अधोमुख तिरहि तोय॥३०॥
तुम महाराज निर्धन निराश। तज विभव विभव सब जग विकाश॥
अक्षर स्वभावसैं लिखै न कोय। महिमा अनन्त भगवंत सोय॥३१॥
कोप्यो सु कमठ निज बैर देख। तिन करी धूल वर्षा विशेष॥
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन। सो भयो पापी लंपट मलीन॥३२॥
गरजंत घोर घन अन्धकार। चमकंत विज्जु जलमुसलधार॥
वरषंत कमठ धर ध्यान रुद्र। दुस्तर करंत निजभवसमुद्र॥३३॥

वस्तु छन्द।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि।
भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण।
अग्नि जाल झलकंत मुख धुनि करंत जिमि मत्तवारण॥
कालरूप विकराल तन मुंडमाल हित कंठ।
ह्वै निशंक वह रंकनिज करै कर्मदृढगंठ॥

चौपाई।

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहिं तज मायाजंजाल॥
भाव भगतिमन हरष अपार। धन्य २ जग तिन अवतार॥३४॥
भवसागरमहं फिरत अजान। मैं तुम सुजस सुन्यो नहिं कान॥
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै। तासौं विपति भुजंगम डरै॥३५॥

मनवाञ्छित फल जिनपदमाहिं । मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥
माया मगन फिर्‌यो अज्ञान । करहिं रकजन मुझ अपमान ॥३७॥
मोहतिमर छायो दृग मोहि । जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ॥
तो दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरमछेद के कुवचन कहैं ॥३८॥
सुन्यो कान जस पूजे पाय । नैनन देख्यो रूप अघाय ॥
भक्ति हेतु न भयो चित चाव । दुखदायक किरियाबिन भाव ॥३६॥
महाराज शरणागत पाल । पतितउधारण दीनदयाल ॥
सुमिरण करहुँनाय निज शीस । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥४०॥
कर्मनिकन्दनमहिमा सार । अशरणशरण सुजश विसतार ॥
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय । तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥
सुरगण वन्दित दया निधान । जगतारण जगपति जगजान ॥
दुखसागरतें मोहि निकासि । निर्भयथान देहु सुखराशि ॥४२॥
मैं तुम चरणकमल गुन गाय । बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥
जन्मजन्म प्रभु पावहुं तोहि । यह सेवा फल दीजे मोहि ॥४३॥

दोधकान्त वेसरी छन्द । षट्पद

इहिविधि श्रीभगवत, सुजश जे भविजन भाषहिं ।
ते निज पुण्य भंडार, संच चिरपाप प्रणासहिं ॥
रोमरोम हुलसति अंग प्रभु गुणमनध्यावहिं ।
स्वर्गसंपदा भुंज, वेग पंचम गति पावहिं ॥
यह कल्याणमन्दिर कियो, कुमुदचन्द्र की बुद्धि ।
भाषा कहत बनारसी, कारण समकितशुद्धि ॥४४॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्रं ।

अथ साधुवन्दना लिख्यते

दोहा ।

श्रीजिनभाषित भारती सुमरि आन मुखपाठ ।
कहौं मूल गुण साधुके, परमित बिंसतिआठ ॥ १ ॥
पंचमहाव्रत आचरन, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, षट आवशिक आचार ॥ २ ॥
भूमिशयन मंजनतजन, वसनत्याग कचलोच ।
एकबार लघुअसन थिति–असन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाई ।

थावर जन्तु पंच परकार । चार भेद जंगम तन धार ।
जो सब जीवनकी रखपाल । सो मुसाधु वन्दहु तिरकाल ॥४॥
संकट सत्य वचन मुख कहै । अथवा मौनविरत धर रहै ।
मृषावाद नहि बोलै रती । सो जिन मारग सांचा जती ॥५॥
कौड़ी आदि रतन परजंत । परिघ अदत्त पदभेद अनंत ॥
दत्त अदत्त न परसै जोय । तरस तरस मुनीश्वर सोय ॥६॥
पशु पंछी नर नारी देव । इत्यादिक रमनी रति सेव ॥
तजहिं तिरस्कार मदन विकार । सो मुनि नमहु जगत हितकार ॥७॥
द्विविधि परिग्रह दशविधि जान । दंभ असंख अनन्त बखान ॥
सकल त्यागन होय निरास । सो मुनि कहै मोक्ष परकास ॥८॥
जथोदिष्ट मारग अनुसरै । प्रासुक भूमि निरख पग धरै ॥
सदय हृदय साधै शिव पंथ । सो ईर्या निरमल निर्ग्रन्थ ॥९॥

निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुख हीन ॥
ऐसे सुवचन कहै स्वभाव । सो ऋषिराज नमहु धरि भाव १०॥
उत्तम कुल श्रावक संचार । तासु गेह प्राशुक आहार ॥
भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौं सुरति सभाल ॥११॥
उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहु जोर कर दोय ॥१२॥
रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अग उठान ॥
डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहु भगति उरधार ॥१३॥
कोमल कर्कश हरुव सभार । रुक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन दुख सुखलहै । सो मुनिराज जिनेश्वर कहै ॥१४॥
आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहिं तिहँ देव ।१५
शुभ सुगध नाना परकार । दुखदायक दुर्गन्ध अपार ॥
नासा विषय गनहिं समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल ॥१६॥
श्यामहरित सित लोहित पीत । वरण विवरण मनोहर भीत ॥
ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध ॥१७॥
शब्द कुशब्दहिं समरस साद । श्रवण सुनत नहिं हरष विषाद ॥
थुति निंदा दोऊ सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥१८॥
सामाइक साधै तिहु काल । मुकति पंथकी करै सँभाल ॥
शत्रुमित्रदोऊ सम गणै । सो मुनिराज करमरिपु हणै ॥१९॥
अर्हत सिद्ध सूरि उवझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणन में मन लाय । तिस मुनिवरके बन्दौं पाय ॥२०॥

पावन पंचपरम पद इष्ट । आगममाहिं जानै उत्कृष्ट ॥
ठानै गुरुथुति बारंबार । सो मुनिराज सदै भवपार ॥२१॥
साम क्रिया गुरुभारे चित्त । दोष विलोक करै प्राछित्त ॥
नित प्रतिक्रमणक्रियासलीन । सो सुसाधु संजम परवीन ॥२२॥
श्रीजिनवचन रचन विस्तार । द्वादशांग परमागम सार ॥
नियमवंत मान करै सज्झाय । सो मुनिवर वंदहु धर भाव ॥२३॥
कायसमर्ग मुद्रा धर नित्त । शुद्धस्वरूप विचारै चित्त ॥
त्यागै त्रिविधियोग ममकार । सो मुनिराज नमो निरधार ॥२४॥
प्रासुक शिला वसति भूखेत । अथवा अंग समभाव सचेत ॥
पश्चिमरैन अलप निद्राय । सो योगीश्वर पैवे काय ॥२५॥
धर्मध्यान शुभ परम विचित्र । अन्तर बाहिज सहज पवित्र ॥
न्हान विलेपन तजै त्रिकाल । नमौं सो मुनि दीनदयाल ॥२६॥
लोकाचारविवर्जित समहीस । विषयवासनारहित अदीन ॥
नगन दिगम्बर मुद्राधार । सो मुनिराज जगत सुखकार ॥२७॥
थावर भेद गर्भित भवजीव । त्रस असंख्य थापति सुसुजीव ॥
कच लुंचै पद करपल जान । सो मुनि नमहु घोरझगपान ॥२८॥
क्षुधा वेदनी उपशम हेत । रस मनरस समभाव समेत ॥
एकवार लघु भोजन करै । सो मुनि मुकति पंथ पगधरै ॥२९॥
देह सवारै साधन मोख । तबलौं वरित कायबल पोख ॥
यह विचार थित लेहिं अहार । सो मुनि परम धरम अनगार ॥३०॥
जहँ जहँ लघुधारमउपाय । तहँ तहँ अमित जीव उतपाद ॥
यह लख तजहिं दंतवन काज । सो शिवपथ चढ़ मुनिराज ॥३१॥

ये अट्ठाविस मूल गुण, जो पालहिं निरदोष ।
सो मुनि कहत "बनारसी" पावै अविचल मोष ॥ ३२ ॥

इतिसाधुवन्दना

अथ मोक्षपैडी लिख्यते

दोहा ।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खै सुनमल्ल ।
जो तुझ अंदरचेतना, वहै तुसाडी अल्ल ॥ १ ॥
ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला ।
अक्खै रोचकशिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला ॥
इस बुझै बुध लहलहै, नहीं रहै मयल्ला ।
इसदा मरम न जानई, सो द्विपद वयल्ला ॥ २ ॥
जिसदी गिरदा पेंचसों, हिरदा कलमल्ला ।
जिसना रत्तौ तिमिरसों, सूझै झलमल्ला ॥
सनै जिन्हादी भूमिनौ, कुज्ञान कुदल्ला ।
सहज तिन्हादा वहजसों, चित रहै दुदल्ला ॥ ३ ॥
जिन्हा इक करमदा, दुविधा पद भल्ला ।
इक अनिष्ट असोहणा, इक झाक झमल्ला ॥
तिन्हा इकन सूझई, उपदेश अहल्ला ।
चकचटाछे लोपना, ज्यों चंद गहल्ला ॥ ४ ॥
जिन्हा चित इतबारसों, गुरुवचन न झल्ला ।
जिन्हा आगें कथन यो, ज्यों कोदों दल्ला ॥

किए तू जकरा साकलां, किए पकरा पल्ला ।
मिटमकरा ज्यौं उरझिया, उर जाल उगल्ला ॥
चेतन जड संजोगमैं, तैं टाका झल्ला ।
तुही छुडावहि आपको, लख रूप इकल्ला ॥ ११ ॥

जो तैं दारिद मानिया, ह्वै ठल्लमठल्ल ।
जो तू मानहि संपदा, भरि दामहू गल्ला ॥
जो तू हुवा करकसा, अरु मोगर मल्ला ।
सो सब नाना रूप ह्वै, नाचै पुद्गल्ला ॥ १२ ॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूप रसल्ला ।
वै सघा भरि जोवना, बूढा अरु बल्ला ॥
लब मझोला ठींगना, गोरा अरु कल्ला ।
सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १३ ॥

जो जीरण ह्वै झरपडै, जो होय नवल्ला ।
जो मुरझावै सुक्कैं, फुला अरु फल्ला ॥
जो पानीमें बह चलै, पावकमें जल्ला ।
सो सब नानारूप ह्वै, निहचै पुद्गल्ला ॥ १४ ॥

एक कर्म दीसै दुधा, ज्यों तुलदा पल्ला ।
हरुवै तन गुरुवैतसों, अध ऊरध थल्ला ॥
अशुभरूप शुभरूप ह्वै, दुहु दिशिनो चल्ला ।
धरै दुविधि विस्तार ज्यौं, वट विरख जटल्ला ॥ १५ ॥

पवन परै रे जो उडै, माटी बिच गल्ला ।
जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥

ज्ञान दिवाकर ऊगियो, मति किरण प्रवल्ला।
है शत खंड विहड्डिया, भ्रम तिमर पटल्ला।
सत्य प्रतापै भजिया, दुर्गती दुहल्ला।
अगि अगारे दज्झिया, ज्यौं तूल पहल्ला ॥ २२ ॥

दोहा।

यह सतगुरुदी देशना, कर आस्रव दीवाड़ि।
लद्धी पैडि मोखदी, करम कपाट उघाडि ॥ २३ ॥
भव थिति जिनकी घटगई, तिनको यह उपदेश।
कहत 'बनारसिदास' यों, मूढ़ न समुझै लेश ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमोखपैडी ॥

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते

दोहा।

परम निरंजन परमगुरु, परमपुरुष परधान।
वन्दहु परमसमाधिगत, भयभंजन भगवान ॥ १ ॥
जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु शीख मन आन।
कछुक जीव अरु कर्मको, निर्णय कहों बखान ॥ २ ॥
अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अकाश।
सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास ॥ ३ ॥
जीव द्रव्यकी द्वै दशा, संसारी अरु सिद्ध।
पंच विकल्पअजीव के, अखय अनादि असिद्ध ॥ ४ ॥

गगन, काल, पुद्गल धरम, अरु अधरम अभिधान ।
अब कछु पुद्गल द्रव्यको, कहों विशेष विधान ॥ ५ ॥
परमाणूनिसों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत ।
जड़ लच्छन निर्जीव दल, रूपी मूरतिवंत ॥ ६ ॥
जो त्रिभुवन थिति देखिये थिर जंगम आकार ।
सो पुद्गल परवानको, है अनादि विस्तार ॥ ७ ॥
अब पुद्गलके बीसगुण, कहों प्रगट समुझाय ।
गर्भित और अनन्तगुण अरु अनन्त परजाय ॥ ८ ॥
श्याम पीत उज्ज्वल अरुण हरित मिश्र बहु भाँति ।
विविधवरन जो देखिये सो पुद्गलकी कांति ॥ ९ ॥
आमल तिक्त कषाय कटु खार मधुर रसभोग ।
ए पुद्गलके पांचगुण धरै नामहिं सबलोग ॥ १० ॥
ताता सीरो चीकनो रूखो नरम कठोर ।
हलका अरु भारीसहज आठ फरस गुणजोर ॥ ११ ॥
जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप ।
अब पुद्गल परवानकी महिमा कहौं अनूप ॥ १२ ॥
शब्द गंध, सूक्षम सरल लम्ब वक्र, लघुथूल ।
विछुरन, भिदन उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥
छाया आकृति, तेज, दुति इत्यादिक बहु भेद ।
ए पुद्गलपरजाय सब प्रगटहिं होय उछेद ॥ १४ ॥
केई शुभ केई अशुभ रुचिर, भयानक भेष ।
सहज स्वभाव विभाव गति अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥
गर्भित पुद्गलपिंडमें अलख अमूरति देव ।

फिरै सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी टेव ॥ १६ ॥

पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति ।
पुद्गलको आप गणै, यहै भरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस ।
याही भरम विभावसों, बढै करमको वंश ॥ १८ ॥

ज्यों ज्यों कर्म विपाकवश, ठानै भ्रमकी मौज ।
त्यों त्यों निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥

ज्यों वानर मदिरा पिये, विच्छू डंकित गात ।
भूत लगै कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥

भ्रम संशयकी भूलसों, लहै न सहज स्वकीय ।
करम रोग समुझै नहीं, यह संसारी जीय ॥ २१ ॥

कर्म रोगके द्वै चरण विषम दुहू की चाल ।
एक कंप प्रकृती लिये, एक ऐंठि असराल ॥ २२ ॥

कंपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य ।
ज्ञान रूप है आतमा, दुहू रोगसों शून्य ॥ २३ ॥

मूरख मिथ्यादृष्टिसों, निरखै जगकी रौंस ।
डरहिं जीव सब पापसों, करहिं पुण्यकी हौंस ॥ २४ ॥

उपजै पापविकारसों, भय तापादिक रोग ।
चिन्ता खेद विथा बढै, दुखमानै सबलोग ॥ २५ ॥

उपजै पुण्यविकारसों, विषयरोग विस्तार ।
आरत रुद्र विथा बढै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥

अथ ध्यानबत्तीसी लिख्यते

दोहा ।

ज्ञान स्वरूप अनन्त गुण, निराबाध निरुपाधि ।
अविनाशी आनन्दमय, वन्दहु ब्रह्मसमाधि ॥ १ ॥
भानु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निशि होत ।
दोऊ जाके नाम मे, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

चौपाई (सोलामात्रा)

चेतहु प्राणी सुन गुरुवाणी । अमृतरूप सिद्धांत बखानी ।
परगट दोऊ नय समुझावैं । मरमी होय मरम सो पावैं ॥ ३ ॥
चेतन जड अनादि सजोगी । आपहि करता आपहि भोगी ।
सहज स्वभाव शकति जब जागै । तब निहचैके मारग लागै ॥ ४ ॥
फिरकै देहबुद्धि जब हो । नयव्यवहार कहावे सोई ।
भेदभाव गुन पंडित बूझै । जाको अगम अगोचर सूझै ॥ ५ ॥
प्रथमहिं दान शील तप भावै । नय निहचै विवहार लखावै ।
परगुणत्यागबुद्धि जब होई । निहचै दान कहावै सोई ॥ ६ ॥
चेतन निज स्वभावमहँ आवै । तब सो निश्चयशील कहावै ।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै । निश्चय तप कहिये इह लेषै ॥ ७ ॥
विमलरूप चेतन अभ्यासै । निश्चयभाव तहा परगासै ।
अब सदगुरु व्यवहार बखानै । जाकी महिमा सब जगजानै ॥ ८ ॥
मनवचकाय शकति कछु दीजे । सो व्यवहारी दान कहीजे ।
मनवचकाय तजै जब नारी । कहिये सोइ शील विवहारी ॥ ९ ॥

मनवचकाय कष्ट जब सहिये । तासों विवहारी तप कहिये ।
मनवचकाय लगनि ठहरावै । सो विवहारी ध्यान कहावै ॥ १० ॥

दोहा ।

दान शील तप भावना, चारों सुख दातार ।
निहचै सों निहचै मिलै, विवहारी विवहार ॥ ११ ॥

चौपाई ।

अब सुन चार ध्यान हितकारी । साधहिं मुक्तिपंथ व्यापारी ॥
मुद्रा मूरति छवि चतुराई । ध्यावै भेष पदस्थ बढ़ाई ॥ १२ ॥
फरस वरण रस गंध सुभाव । यह रूपस्थध्यानकी ठाव ॥
इनको संगति मनसा साधै । लगन सीख निज गुण आराधै ॥१३॥
यौं मगन सो मूढ कहावै । अलख अनंत विचक्षण पावै ॥
अर्हंत आदि पंच पदवीजे । तिनके गुणको सुमरण कीजे ॥१४॥
गुणको भेद करत गुण कहिये । परमपदस्थध्यान सो कहिये ॥
पंचास्रव तज चित निरोधै । आतमदृष्टि घटअन्तर शोधै ॥ १५ ॥
भिन्न भिन्न जड़ चेतन जोवै । गुण विशेष गुणमाहिं समोवै ॥
यह पिंडस्थध्यान सुखदाई । कर्मनिर्जरा हेतु उपाई ॥ १६ ॥
आप संभार आपसों जोरै । परगुणसों सब नाता तोरै ॥
लगे समाधि अकम्पम होई । रूपातीत कहावै सोई ॥ १७ ॥

दोहा ।

यह रूपस्थपदस्थविधि, अरु पिंडस्थविचार ।
रूपातीत चितीत अब ध्यान चार परकार ॥ १८ ॥

चौपाई ।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकाशै । ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै ॥
आर्त रौद्र कुध्यानहिं त्यागै । धर्मशुकलके मारग लागै ॥ १९ ॥

आरत ध्यान चिंतवन कहिये । जाकी संगति दुरगतिलहिये ॥
इष्टविजोग विकलता भारी । अरि अनिष्ट सजोग दुखारी ॥ २० ॥

तनकी व्यथा मगन मन झूरै । अग्र शोचकर वाछति पूरै ॥
ए आरतके चारों पाये । महा। मोहरससों लपटाये ॥ २१ ॥

अव सुन रौद्र ध्यानकी सैली । जहा पापसों मतिगति मैली ॥
मनउछाहसों जीव विराधै । हिये हर्षधर चोरा साधै ॥ २२ ॥

विकसित झूटवचन मुखभाखै । आनदितचितविषया राखै ॥
चारों रौद्र ध्यानके पाये । कर्मवन्धके हेतु वनाये ॥ २३ ॥

दोहा ।

आरतरौद्र विचारतें, दुखचिन्ता अधिकाय ।
जैसें चढ़ै तरगिनी, महामेघ जलपाय ॥ २४ ॥

चौपाई ।

आर्त रौद्र कुध्यान वखाने । धर्मध्यान अव सुनहु सयाने ॥
केवल भाषित वाणी मानै । कर्मनाशको उद्यम ठानै ॥ २५ ॥
पूरवकम उदय पहिचानै । पुरुषाकार लोकथिति जानै ॥
चारों धर्म ध्या के पाये । जे समुझे ते मारग आये ॥ २६ ॥
अव सुन शुक्ल ध्यानकी वातें । मिटै मोहकी सत्ता जातें ।
जोग साध सिद्धात विचारै । आतम गुण परगुण निरवारै ॥ २७ ॥

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै । पृथक्त्व वितर्क आदि पद सोहै ॥
उपशम पद चढ़ै नहिं कोई । क्षपकश्रेण निर्मल मन होई ॥ २८ ॥
तब मुनि लोकालोकविलासी । जहँ कर्मनकी प्रकृति पचासी ॥
केवल ज्ञान लहै अरु दूजा । एक वितर्क नाम पद पूजा ॥ २९ ॥
जिनवर आयु निकट जब आवै । तहां बहत्तर प्रकृति खपावै ॥
सूक्षम चित्त मनोबल छीना । सूक्षम क्रिया नाम पद तीना ॥ ३० ॥
शक्ति अनंत जहां परकासै । तत्क्षिण तेरह प्रकृति विनासै ॥
पंच लघुक्षर परमित बेरा । अष्ट कर्मको होय निबेरा ॥ ३१ ॥
चरण चतुर्थ साधि शिव पावै । विपरीत क्रिया निवृत्ति कहावै ॥
शुक्ल ध्यानके चारौं पाये । मुक्तिपंथकारण समुझाये ॥ ३२ ॥

शुक्ल ध्यान औषधि लगे मिटै करमको रोग ।
कोइला छांडै कालिमा, होत अग्निसंजोग ॥ ३३ ॥
यह परमारथ पंथ गुन, अगम अनन्त बखान ।
कहत बनारसि अल्पमति जथाशक्ति परवान ॥ ३४ ॥

इति ध्यानबत्तीसी

अथ अध्यातमबत्तीसी लिख्यते

शुद्ध वचन सद्गुरु कहैं, केवल भाषित अंग ।
लोक पुरुषपरिमाण सब चौदह रज्जु उतंग ॥ १ ॥
धनघनपूरित लोकमैं धर्म अधर्म अकास ।
काल जीव पुद्गल सहित, जहाँ सर्वको वास ॥ २ ॥

छहों दरब न्यारे सदा, मिलें न काहू कोय।
छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥
चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिलमें खलि तेल।
प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको खेल ॥ ४ ॥
वह वाके रससों रमें, वह वासों लपटाय।
चुम्बक करषे लोहको, लोह लगे तिहँ धाय ॥ ५ ॥
जड़ परगट चेतन गुपत, द्विविधा लखै न कोय।
यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचच्छण होय ॥ ६ ॥
ज्यों सुवास फल फूलमे, दही दूधमें, घीव।
पावक काठ पषाणमें, त्यों शरीरमे जीव ॥ ७ ॥
कर्मस्वरूपी कर्ममे, घटाकार घटमाहिं।
गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यातैं परगट नाहिं ॥ ८ ॥
सहज शुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट।
द्रव्यकर्म नोकर्मसों, बँधी पिंडकी पोट ॥ ९ ॥
ज्ञानरूप भगवान शिव, भावकर्म चित भर्म।
द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥
ज्यों कोठीमें धान थो, चमी माहिं कनबीच।
चमी धोय कन राखिये, कोठी धोए कीच ॥ ११ ॥
कोठी सम नोकर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान।
भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान ॥ १२ ॥
द्रव्यकर्म नोकर्ममल, दोऊ पुद्गल जाल।
भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल ॥ १३ ॥

द्विविधि धरमकी धारसों द्विविधि धारको फेर।
एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥
ज्ञानधार अन्तर गुपत, कर्मधार प्रत्यच्छ।
दोऊ चेतनभाव ज्यों, शुकलपच्छ, तमपच्छ ॥ १५ ॥
निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि।
परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी घूमि ॥ १६ ॥
ज्ञानचक्रकी ढरनिमें सजग भाँति सब ठौर।
कर्मचक्रकी नींदसों, मृषा स्वप्नकी दौर ॥ १७ ॥
ज्ञानचक्र ज्यों दरदामी, कर्मचक्र ज्यों अंध।
ज्ञानचक्रमें निर्जरा कर्मचक्रमें बन्ध ॥ १८ ॥
ज्ञानचक्र अनुसरणको देव धर्म गुरु द्वार।
देव धर्म गुरु जो लखैं, ते पावैं भवपार ॥ १९ ॥
भववासी जानै नहीं, देवधरमगुरुभेद।
पर्यो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको खेद ॥ २० ॥
उदय सुकर्म कुकर्मके, रुलै चतुर्गति माहिं।
निरखै बाहिजदृष्टिसों तहँ शिवमारग नाहिं ॥ २१ ॥
देवधर्म गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै ठौर।
बँधी दृष्टि मिथ्यातसों लखै औरकी और ॥ २२ ॥
भेषधारीको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव।
धर्म कहै कुल रीतिको, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥
देव निरंजनको कहै, धर्म वचन परवान।
साधु पुरुषको गुरु कहै, यह सुकर्मको ज्ञान ॥ २४ ॥

ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि।
त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥

तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरको और।
त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय।
त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥

जैसैं सब जादव जरे, द्वारापतिकी आग।
त्यों मायामें तुम परे, कहा जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ।
तज माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ़ कंचनकांति।
पापपुण्य कर त्यों भये, मूढातम बहु भांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहिं तजै, वानहीनके होत।
घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥

पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्यपापमल खोय ॥ १८ ॥

पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होहिं मलीन ॥ १९ ॥

निंबादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास।
दुर्ज्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥

जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै चहुँ ओर।
तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥

ज्यों जल कातक मूरिये, सूखे सरवर पानि ।
तैसें संवरके किये कर्म्म निर्ज्जरा जानि ॥ २२॥

ज्यों बूटी संजोगतैं पारा मूर्छित होय ।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥ २३॥

मेल खटाई मांजिये पारा परगट रूप ।
शुक्लध्यान अभ्यासतैं, दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४॥

कहि उपदेश बनारसी चेतन अब कछु चेतु ।
आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु ॥ २५॥

इति ज्ञानपचीसी

अथ शिवपचीसी लिख्यते

दोहा ।

ब्रह्मविलास चिदाकाशधर, चिदानन्द सुखरूप ।
बन्दौं सिद्धसमाधिमय शिवस्वरूप भगवान ॥ १॥
मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सीव ।
बन्दौं जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनीव ॥ २॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान अवाची । शिवमहिमा अनुभवमति सांची ॥
शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुआ अविनाशी ॥३॥
जीव और शिव और न होई । सोई जीववस्तु शिव सोई ॥
जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ॥ ४॥

जानै मानै अनुभवै, करै भक्ति मन लाय।
परसगति आस्रव सधै, कर्मबन्ध अधिकाय ॥ २५ ॥

कर्मबंधतैं भ्रम बढै, भ्रमतैं लखै न वाट।
अंधरूप चेतन रहै, बिना सुमति उद्‌घाट ॥ २६ ॥

सहजमोह जब उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश।
तब विभाव भवथिति घटै, जगै ज्ञान गुण लेश ॥२७॥

ज्ञानलेश सो है सुमति, लखै मुकतिकी लीक।
निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक ॥ २८ ॥

ज्यों सुपरीक्षित जौंहरी, काच डाल मणि लेय।
त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरू सेय ॥ २९ ॥

दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध।
परखै आतम संपदा, तजै सनेह विरुद्ध ॥ ३० ॥

अरचै दर्शन देवता चरचै चारित धर्म।
दिढ परखै गुरुज्ञानसों, यहै सुमतिको कर्म ॥ ३१ ॥

सुमतिकर्मतैं शिव सधै, और उपाय न कोय।
शिवस्वरूप परकाशसों, आवागमन न होय ॥ ३२ ॥

सुमतिकर्म सम्यक्तसों, देव धर्म गुरु द्वार।
कहत 'बनारसि' तत्त्व यह, लहि पावैं भवपार ॥ ३३ ॥

इति श्रीअध्यातमबत्तीसी

अथ श्री ज्ञानपच्चीसी लिख्यते

सुरनर तिर्यग योनिमें, नरक निगोद भ्रमंत ।
महा मोहकी नींदसों सोये काल अनंत ॥ १ ॥

जैसें ज्वरके जोरसों भोजनकी रुचि जाइ ।
तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥

लगै भूख ज्वरके गयें, रुचिसों लेय अहार ।
अशुभ गये शुभके जगे जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥

जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठे तरंग ।
त्यों मनसा चंचल भई परिगहके परसंग ॥ ४ ॥

जहां पवन नहिं संचरै तहां न जल कल्लोल ।
त्यों सब परिग्रह त्यागसों मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥

ज्यों काहू विषधर डसै रुचिसों नीम चबाय ।
त्यों तुम ममतासों मढ़े मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥

नीम रसन परसै नहीं निर्विष तन जब होय ।
मोह घटे ममता मिटे विषय न वांछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढ़े बूडहि अंध अदेख ।
त्यों तुम भवजलमें परे बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥

जहां अखंडित गुण लगे खेवट शुद्धविचार ।
आतम रुचि नौका चढ़े पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नहीं महामत्त गजराज ।
त्यों मन तृष्णामें फिरै, गनै न काज अकाज ॥ १० ॥

ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि ।
त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥

तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरको और ।
त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय ।
त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥

जैसैं सब जादव जरे, द्वारावतिकी आग ।
त्यों मायामें तुम परे, कहा जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ ।
तज माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ कंचनकांति ।
पापपुण्य कर त्यों भये, मूढातम बहु भांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहिं तजै, बानहीनके होत ।
घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥

पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्यपापमलखोय ॥ १८ ॥

पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होहिं मलीन ॥ १९ ॥

निंबादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास ।
दुर्ज्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥

जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै चहुँ ओर ।
तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥

ज्यों बल कावत मूर्छिवे, सूखे सरवर पानि ।
वैसें सबरके किये, कर्म निर्जरा जानि ॥ २२॥

ज्यों बूटी संजोगतें पारा मूर्छित होय ।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥ २३॥

मेल खटाई मांजिये पारा परगट रूप ।
शुकलध्यान अभ्यासतें दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४॥

कहि उपदेश बनारसी चेतन अब कछु चेतु ।
आप बुझावत आपको उदय करनके हेतु ॥ २५॥

इति अध्यात्मपचीसी

अथ शिवपचीसी लिख्यते

दोहा ।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान ।
बन्दों शिवसमाधिमय शिवस्वरूप भगवान ॥ १॥

मोह महातम मारिनी, ज्ञान ज्वलिकी सींव ।
बन्दों जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनींव ॥ २॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान अवाची । शिवमहिमानुभवमति साची ॥
शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुआ अविनाशी ॥३॥

जीव और शिव और न होई । सोई जीवबस्तु शिव सोई ॥
जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ॥ ४॥

करै जीव जब शिवकी पूजा । नामभेदतैं होय न दूजा ॥
विधि विधानसों पूजा ठानैं । तब शिव आप आपको जानैं ॥५॥
तन मंडप मनसा जह 'वेदी' । शुभलेश्या गह सहज 'सफेदी' ॥
आतमरुचि 'कुंडली' वखानी । तहां 'जलहरी' गुरुकी वानी ॥६॥
भावलिंग सो 'मूरति' थापी । जो उपाधि सो सदा अव्यापी ॥
निर्गुणरूप निरंजन देवा । सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥
समरस 'जल' अभिषेक करावै । उपशम 'रसचन्दन घसि लावै ॥
सहजानन्द 'पुष्प' उपजावै । गुणगर्भित 'जयमाल' चढावै ॥८॥
ज्ञानदीपकी 'शिखा' सवारै । स्याद्वाद घटा झनकारै ॥
अगम अध्यातम चौंर दुलावै । चायक 'धूप' स्वरूप जगावै ॥९॥
निहचै दान 'अर्घविधि होवै । सहजशील गुण 'अक्षत ढोवै ॥
तप नेवज' काढै रस पागै । विमलभाव फल राखइ आगै ॥१०॥

जो ऐसो पूजा करै, ध्यानमगन शिवलीन ।
शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन ॥ ११ ॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई शिवमुद्रा मंडित जो होई ॥
सुरसरिता करुणारसवाणी । सुमति गौरि अर्द्धङ्ग वखानी १२ ॥
त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेखा । विमलभावसमकित शशिलेखा ॥
सुगुरु शीख सिंगो उर बाधै । नयविवहार बाघम्बर काधे ॥-१३ ॥
कबहू तन कैलाश कलोलै । कबहु विवेकबैल चढ डलै ॥
रुंडमाल परिणाम त्रिभंगी । मनसा चक्र फिरै सरवंगी ॥ १४ ॥

शक्ति विभूति अंगछवि छाजै । तीन गुपति तिरशूल विराजै ।
कंठ विभाव विषम विष सोहै । महामोह विषहर नहिं मोहै ॥१५॥
संजम जटा सहज सुख भोगी । निरवेरूप दिगम्बर जोगी ॥
ब्रह्म समाधिध्यान गृह साजै । तहाँ अनाहत डमरू बाजै ॥ १६ ॥

पंच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान ।
ग्यारह प्रतिमा धारतैं, ग्यारह रुद्र समान ॥ १७ ॥

मंगल करन मोक्षपद दाता । यातैं शंकर नाम विख्याता ॥
जब मिथ्यामत तिमिर विनशै । अंधकहरण नाम परकाशै ॥१८॥
ईश महेश भुवननिधिस्वामी । सर्व नाम जग अंतरजामी ॥
त्रिभुवन त्याग रमै शिवठामा । कहिये त्रिपुरहरण तब नामा ॥१९॥
अष्टकर्मसों मिलै अकेला । महारुद्र कहिये तिहिं बेला ॥
मनकामना रहै नहिं कोई । कामदहन कहिये तब सोई ॥ २० ॥
अक्षवाणी अभ्यास पढ़ावै । महादेव न्याइ उपमा पावै ॥
आदि अन्त कोई नहीं जानै शंभुनाम तब जगत बखानै ॥ २१ ॥
मोहहरण हर नाम कहीजे । शिवस्वरूप शिवसाधन कीजे ॥
जब करनी निश्चयमैं आवै । तब जगमंडन विरद कहावै ॥ २२ ॥
निश्चनाथ जगपति जग जानै । मृत्युंजय तब मृत्यु न मानै ॥
शुक्ल ध्यान गुण जब आरोहै । नाम कपूरगौर तब सोहै ॥ २३ ॥

इहिविधि जे गुण आदरै रहै राचि जिहँ ठौर ।
जिहँ जिहँ मारग अनुसरै, ते सब शिवके मौर ॥२४॥

नाव जथामति कल्पना, कहू प्रगट कहु गूढ़ ।
गुणी विचारै वस्तु गुण, नाँव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥

मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों प्रीति ।
पंडित लखै 'बनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥२६॥

इति शिवपचीसी

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते

जैसें काहू पुरुषको, पार पहुँचवे काज ।
मारगमाहि समुद्र तहा, कारणरूप जहाज ॥ १ ॥

तैसें सम्यकवतको, और न कछु इलाज ।
भवसमुद्रके तरणको, मन जहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहिं ।
मूरख मर्म न जानहीं, बाहिर खोजन जाहिं ॥ ३ ॥

मूरखहूके घटविषै, जलजहाज अरु पौन ।
दृगमुद्रित मालीम तहँ, लखै सँभारै कौन ? ॥ ४ ॥

कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकषाय तरंग ।
बडवागनि तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सरवंग ॥५॥

भरम भँवर तामें फिरै, मनजहाज चहु ओर ।
गिरै फिरै बूडै तिरै, उदय पवनके जोर ॥६॥

जब चेतन मालिम जगै, लखै विपाक नजूम।
डारै समता शृंखला, थकै भँवर की घूम ॥७॥
मालिम सहज समुद्रको जानै सब विरतंत।
शुभोपयोग तहँ एक सम, अशुभ भाव अलहंत ॥८॥
वस्तु देख नहिं भय करै, रत देखै उमगाह।
करै गमन शिवदीपको यह मालिमकी चाह ॥९॥
दिशि परखै गुरुवचनसौं फेरै राचवि सुगम।
धरै सांग शिवदीपमुख न दवान शुभध्यान ॥ १० ॥
चहै शुद्ध अनुभव पवन गहै विवेक निरनीक।
बहै अमर शिवदीपको रहै दृष्टिगति ठीक ॥ ११ ॥
मनजहाज इहिविधि चलै गेहै सिंधुकपाट।
लावै निज सपरिग्रह, पावै केवल घाट । १२ ॥
मालिम उतर जहाजसों, करै दीप को दौर।
जहां न जल न जहाज गति, नहिं करनी कछु और ॥१३॥
मालिमकी अखिलमतिटी, मालिम दीप न दोय।
यह भवसिन्धुचतुर्दशी मुनिचतुर्दशी होय ॥ १४ ॥
इति सिन्धुचतुर्दशी

अथ अध्यातम फाग लिख्यते

अध्यातम बिन क्यों पाइये हो परमपुरुषको रूप।
अघट अंग घट मिल रह्यो हो महिमा अगम अनूप ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १ ॥

विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसंत।
प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमत॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥

सुमति कोकिला गह गही हो बही अपूरब बाउ।
भरम कुहर बादरफटे हो, घट जाडो जड ताउ॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥

मायारजनी लघु भई हो, समरस दिवशशिजीत।
मोहपंककी थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥

शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहिं अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलिविस्तार॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥

शशिविवेक निर्मल भयो हो, थिरता अमिय झकोर।
फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥

सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द।
हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ७

दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निर्ज्जरा जोर।
धार धारणा बहचली हो, शिवसागर मुख ओर॥
अध्यातमबिन क्यों पाइये हो॥ ८

वितथवात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज।
जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्तके राज॥

मवपरणवि चाचरि भई हो, चहकर्म बनचाह ॥
चलख चमूरति चातमा हो खेली धर्म धमाल ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १० ॥

नयपरकति चाचरि मिलि हो, ज्ञानध्यान डफताल।
पिचकारी पद साधना हो संवर भाव गुलाल ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥ ११ ॥

राग विराग चलापिये हो भावभगति शुभ तान।
रीझ परम रसलीनता हो दीजे दश विधिदान ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥ १२ ॥

दया मिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान।
शील सलिल चति सीयला हो संजम नागर पान ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो । १३ ॥

गुपति चंग परगासिये हो यह निलजता रीति।
चकथ कथा मुखभाखिये हो यह गारी निरनीति ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥१४॥

उद्धत गुण रसिया मिले हो चमल विमल रसप्रेम।
सुरत तरंग मह छकि रहे हो मनसा वाचा नेम ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥१५॥

परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका चाग।
चाठ काठ सब जरि बुझे हो गई, तताई भाग ॥
चप्पातमबिन क्यों पाइये हो ॥१६॥

प्रकृति पचासी लगि रही हो भस्म लेख है सोय।

न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहँ खेल न कोय ॥
अध्यातमविन क्यों पाइये हो ॥१७॥
सहज शक्ति गुण खेलिये हो, चेत "बनारसिदास।"
सगे सखा ऐसे कहै हो, मिटै मोहदधि फास ॥
अध्यातमविन क्यों पाइये हो ॥ १८ ॥

इति अध्यातमधमार।

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई

परिवा प्रथम कला घट जागी। परम प्रतीतिरीति रसपागी ॥
प्रतिपद परम प्रीति उपजावै। वहै प्रतिपदा नाम कहावै ॥ १ ॥
दूज दुहूँधी दृष्टि पसारै। स्वपरविवेकधारणा धारै ॥
दर्वित भावित दीसै दोई। द्वय नय मानत द्वितीया होई ॥ २ ॥
तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै। त्रिविधिरूप त्रिभुवन आभासै ॥
तीनों शल्य उपाधि उछेदै। त्रिधा कर्मकी परिणति भेदै ॥ ३ ॥
चौथ चतुर्गतिको निरवारै। कर चकचूर चौकरी चारै ॥
चारों वेद समुझि घर आवै। तब सुअनंत चतुष्टय पावै ॥ ४ ॥
पाचैं पच सुचारित पालै। पचज्ञानकी सुरति संभालै ॥
पाचों इन्द्रिय करै निरासा। तव पावै पंचमगति वासा ॥ ५ ॥
छठ छहकाय त्याग धर सोवै। छह रस मगन छ आकृति होवै ॥
जब छहदरशनमे न अरूझै। तब छ दर्वसों न्यारा सूझै ॥ ६ ॥
सातैं सातों प्रकृति खिपावै। सप्तभंग नयसों मन लावै ॥
त्यागै सात व्यसनविधि जेती। निभय रहै सात भयसेती ॥ ७ ॥

आठैं आठ महामद भजै। अष्टसिद्धिरिद्धिसों नहीं रजै॥
अष्टकर्ममलमूल बहावै। अष्टगुणातम सिद्ध कहावै॥८॥
नौमी नवरस मैं रस चखै। सो ममधित पर नवपद सेवै॥
करै भक्तिविधि नव परकारा। निरखै नवतत्त्वमसों न्यारा॥९॥
दसमी दशदिशिसों मन मारै। दश प्रश्नसों नाता टारै॥
दशविधि दान अभ्यन्तर साधै। दशलक्षण मुनिधर्म अराधै॥१०॥
ग्यारस ग्यारह प्रकृति विडारै। ग्यारह प्रतिमापद परकारै॥
ग्यारह रुद्र कुलिंग बखानै। ग्यारह विधा अंग जिन मानै॥ ११॥
बारस बारह विरति बढ़ावै। बारह विधि तपसों तन तावै॥
बारहभेद भावना भावै। बारह अंग जिनागम गावै॥ १२॥
तेरस तेरह क्रिया संभालै। तेरह विधन काठिया टालै॥
तेरहविधि संजम अवधारै। तेरह पालक जीव विचारै॥ १३॥
चौदस चौदह विद्या मानै। चौदह गुणथानक पहिचानै॥
चौदह मारगना मन आनै। चौदहरज्जु लोक परवानै॥ १४॥
पन्द्रस पन्द्रह तिथि गनिलीजे। पन्द्रह पात्र परखि धन दीजे॥
पन्द्रह जोगरहित जो परखी। सो पद शून्य अमावस परखी॥१५॥
पूनौं पूरन अविनासी। पूरन गुण पूरन परगासी॥
पूरन प्रभुता पूरणमासी। कहै साधु तुलसी बनवासी॥ १६॥

इति षोडशतिथि

अथ तेरह काठिया लिख्यते

जे बटपारें वाटमें करहिं उपद्रव जोर।
तिन्हें देश गुजरात में कहहिं काठिआवार॥ १॥

त्यों या तेरह काठिया, करहि धर्मकी हानि ।
तातै कछु इनकी कथा, कहहुँ विशेष बखानि ॥ २ ॥
जूआ आलस शोक भय, कुकथा कौतुक कोह ।
कृपणबुद्धि अज्ञानता, भ्रम निद्रा मद मोह ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया 'जूआ' जान । जामें पंच वस्तुकी हान ।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म । मिटै सुजश विनशै धनधर्म ॥ ४ ॥
द्वितिय काठिया "आलसभाव" । जासु उदय नाशै विषभाव ॥
बाहिर शिथिल होहि सब अंग । अंतर धर्मवासना भंग ॥ ५ ॥
ठग तीसरो 'शोक' संताप । जासु उदय जिय करै विलाप ॥
सूतक पातक जिहि घर होय । धर्मक्रिया तहं रहै न कोय ॥ ६ ॥
'भय' चतुर्थ काठिया बखान । जाके उदय होय बलहान ॥
डर कपे नहि फुरै उपाय । तब सुधर्म उद्यम मिट जाय ॥ ७ ॥
ठग पंचम "कुकथा" बकवाद । मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद ॥
जबलों जीव मगन इसमाहिं । तबलों धर्म वासना नाहिं ॥ ८ ॥
"कौतूहल' छट्टम काठिया । भ्रमविलाससों हरषै हिया ॥
मृषा वस्तु निरखै धर ध्यान । विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान ॥ ९ ॥
'कोप" काठिया है सातमा । अग्नि समान जहां आतमा ॥
आप न दाहै औरको दहै । तहां धर्मरुचि रंचन रहै ॥ १० ॥
"कृपणबुद्धि" अष्टम बटपार । जामें प्रगट लोभ अविकार ॥
लोभ माहिं ममता परकाश । ममता करै धर्मको नाश ॥ ११ ॥
नवमा ठग 'अज्ञान" अगाध । जासु उदय उपजै अपराध ॥
जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहां धर्म न होय ॥१२॥

दशम काठिया भ्रम' विरूप। भ्रमसों अशुभ करमका धूप ॥
अशुभ कर्म दुरमति की खानि। दुरमति करै धर्मको हानि ॥१३॥
एकादशम काठिया "नींद"। जासु उदय चित वस्तु न बींद ॥
मन वच काय हाय अडडम। बूडै धन कर्मघनकूप ॥ १४ ॥
ठग द्वादशम "मदन" मार। जामें मकरराग अधिकार ॥
मकररोग मरु विनर्षविराय। जहँ अविनय तहँ धर्मविरोध ॥१५॥
तेरम चरम काठिया "मोह"। जो विवेकसों करै विद्रोह ॥
अविवेकी मानुष तिरजंच। धर्मवारता धरै न रंच ॥ १६ ॥
येही तेरह करम ठग। लहिँ रतन त्रय छीन ॥
यातैं संसारी दशा। कहिये तेरह तीन ॥ १७ ॥

इति काठिया कथित।

अथ अध्यातम गीत लिख्यते,

राग गौरी

मेरा मनका प्यारा जो मिलै। मेरा सहज सनेही जो मिलै ॥टेक॥
अवधि अयोध्या आतम राम। सीता सुमति करै परणाम ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज० ॥१॥
उपज्यो कंत मिलनको चाव। समता सखीसों कहै इसभाव ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै मेरा० ॥ २ ॥
मैं विरहिन पियके आधीन। यों तलफों ज्यों जल बिन मीन।
मेरा — — ॥ ३ ॥

बाहिर देखू तो पिय दूर। बट देखे घटमे भर पूर॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार। वचनअगोचर मनके पार॥
मेरा० ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय। कबधों पियको दर्शन होय॥
मेरा० ॥ ६ ॥

सुगम सुपथ निकट है ठौर। अंतर आड विरहकी दौर॥
मेरा० ॥ ७ ॥

जउ देखों पियकी उनहार। तन मन सर्वस डारों वार॥
मेरा० ॥ ८ ॥

होहुँ मगन मैं दरशन पाय। ज्यों दरियामें बूंद समाय॥
मेरा० ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय। ओला गल पाणी ज्यों होय॥
मेरा० ॥१०॥

मैं जग ढूढ फिरी सब ठौर। पियके पटतर रूप न और॥
मेरा० ॥ ११॥

पिय जगनायक पिय जगसार। पियकी महिमा अगम अपार॥
मेरा० ॥१२॥

पिय सुमिरत सब दुख मिट जाहिं। मोरनिरख ज्यों चोर पलाहि॥
मेरा० ॥१३॥

भयभजन पियको गुनवाद। गजगजन ज्यों केहरिनाद॥
मेरा० ॥१४॥

भागइ भरम करत पियध्यान। फटइ तिमिर ज्यों उगत भान॥

मेरा॰ — — ॥१५॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर। नाग डरइ ज्यों बोलत मोर॥

मेरा — — ॥१६॥

बसौं सदा मैं पियके गाँव। पियतज और कहाँ मैं जाँव॥

मेरा॰ — — ॥१७॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ। जातहि जात मिलै सब कोइ॥

मेरा॰ — — ॥१८॥

पिय मोरे घट, मैं पियमाहिं। जलतरंग ज्यों दुविधा नाहिं॥

मेरा — — ॥१९॥

पिय मो करता मैं करतूति। पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति॥

मेरा॰ — — ॥२०॥

पिय सुखसागर मैं सुखसींव। पिय शिवमन्दिर मैं शिवनींव॥

मेरा — — ॥२१॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम। पिय माधव मो कमला नाम॥

मेरा — — ॥२२॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि। पिय जिनवर मैं केवलवानि॥

मेरा॰ — ॥२३॥

पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष। पिय जोगी मैं मुद्र भेष॥

मेरा — — ॥२४॥

पिय मो रसिया मैं रसरीति। पिय व्यवहारिया मैं परतीति॥

मेरा॰ — — ॥२५॥

जहा पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहा पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध ॥
मेरा० ॥२६॥
जहाँ पिय राजा तहा मैं नीति । जहँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥
मेरा० ॥२७॥
पिय गुणग्राहक मैं गुणपाति । पिय बहुनायक मैं बहुभाति ॥
मेरा० ॥२८॥
जहँ पिय तहँ मैं पियके संग । ज्यों शशि हरिमे ज्योति अभंग ॥
मेरा० ॥२९॥
पिय सुमिरन पियको गुणगान । यह परमारथपथ निदान ॥
मेरा० ३०॥
कहइ व्यवहार 'बनारसी' नाव । चेतन सुमति सटी इकठाव ॥
मेरा० ॥३१॥

॥ इति चेतनसुमति गीत ॥

अथ पंचपदविधान

दोहा

नमो ध्यान
पंचसुचरण

बन्दों श्री अर
बन्दों आचारज
एई पंच इष्ट
सिद्ध देव पर

मिटइ मोई जम करै न कोइ। भयो कदाच न कबहूँ होइ ॥
भ्रलख भ्रखंडित भ्रविचलधाम। निर्मल निराकार निरमाम ॥४॥
भव गुरु कहों चार परकार। परम निधान धरमधनधार ॥
मरमवंत शुभ कर्म सुजान। त्रिभुवनमाहिं पुरुष परधान ॥ ५ ॥
प्रथम परमगुरु श्री अरहंत। द्वितिय परमगुरु सूरि महंत ॥
तृतिय परमगुरु श्रीउवझाय। चौथे परम सुगुरु मुनिराय ॥६॥
परम ज्ञान दर्शनभण्डार। वाणी खिरै परम सुखकार ॥
परम चतारिक तमचारंत। परम सुगुरु कहिये अरहंत ॥७॥
धर्मध्यान धारै वरविद्व। मानें धर्म वैराग्य सिद्ध ॥
धर्मनिधान धरम सों प्रेम। धर्म सुगुरु आचारज एम ॥ ८ ॥
चौदह पूरब ग्यारह अंग। पढ़ै मरम जानै सरवंग ॥
परको मर्म कहै समुझाय। यातें परम सुगुरु उवझाय ॥ ६ ॥
षट आवश्यक कर्म नित करै। त्रिविधि कर्मममता परिहरै ॥
विपुल करम सायें समकिती। परम सुगुरु सामानिक जती ॥१०॥
पंच सुपद श्रीजिन विलीन। दुरित हरन दुख दारिद दौन ॥
पढ़ जप सुमर भोर जप गौन। इम गुण महिमा बरणे कौन ॥

दोहा

महामंत्र ये पंचपद भाराधै जो कोय।
कहत 'बनारसिदास' पद अजर सदाशिव होय ॥ १२ ॥

॥ इति श्री पंचपदविधान ॥

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आतमाराम।
बरणो देवी सुमति के, अष्टोत्तरशत नाम ॥॥ १ ॥

॥ रोडक छन्द ॥

सुमति सबुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता।
शशिवदनी सेमुषी शिवमति धिषणा सीता ॥
सिद्धा संजमवती स्याद्वादिनी विनीता।
निरदोषा नीरजा निर्मला जगत अतीता ॥
शीलवती शोभावती शुचिधर्मा रुचिरीति।
शिवा सुभद्रा शंकरी, मेधा दृढ़परतीति ॥ २ ॥
ब्रह्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता।
पद्मा पद्मावती वीतरागा गुणमीता ॥
शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता।
समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता ॥
कल्याणी कमला कुशलि, भवभजनी भवानि।
लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखखानि ॥ ३ ॥
परमा परमेश्वरी परम पंडिता अनन्ता।
असहाया आमोदवती अभया अघहन्ता ॥
ज्ञानवती गुणवती गौमती गौरी गंगा।
लक्ष्मी विद्याधरी आद सुंदरी असंगा ॥
चन्द्राभा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि।
चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि ॥ ४ ॥

चिदानन्दी चिद्रूप क्षमा वसुमती विचित्रा ।
सर्वंगी अचला जगतजननी जगमित्रा ।
अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदंका ।
दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निरशंका ॥
धर्मधरा धीरज धरनि मोहनाशिनी वाम ।
जगत विश्रामिनि भगवती मरमभेदनी नाम ॥ ५ ॥

घत्तानन्द

त्रिभुवनजनमीता चितवचितीता सुमता भवसागरतरणी ।
जिनमता जिनवानी दयानिधानी यह सुमतिदेवी वरणी ॥ ६ ॥

इति श्रीसुमतिदेवीशतक.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते

वस्तु छन्द

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान ।
मुख ओंकारधुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ॥
रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै ॥
सो सत्यारथ शारदा तासु भक्ति उर आन ।
छन्द भुजंगप्रयातमें अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला।
सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला॥
महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ३॥

अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा।
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा॥
चिदानन्द-भूपाल को राजधानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ४॥

समाधान रूपा अनूपा अक्षुद्रा।
अनेकान्तधा स्यादवादाङ्कमुद्रा॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी बखानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ५॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा।
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा॥
महापावनी भावना भव्यमानी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ६॥

अतीता अजीता सदा निर्विकारा।
विषैवाटिकाखण्डिनी खड्गधारा॥
पुरापापविक्षेपकर्त्री कृपाणी।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥ ७॥

अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा।
अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा॥

निशाङ्क निरङ्क चिदङ्क भवानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ८ ॥
अशाङ्क सुदेका विवेका विधानी ।
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ॥
समस्तावलोका निरस्तानिदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ९ ॥

वस्तुछन्द

जैनवाणी जैनवाणी सुनहि जे जीव ।
जे आगम रुचिधरैं जे प्रतीति मन माहिं आनहिं ।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं ॥
जे हितहेतु "बनारसी" देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परम सुख तज संसार कलेश ॥ १ ॥

इति शारदाष्टक

अथ नवदुर्गाविधान लिख्यते ।

कवित्त

प्रथमहिं समकितवंत लखि आपापर
परको सरूप त्यागी आप गहलेतु है ।
बहुरि विशेष साध्यसाधक अवस्था भेद
साधक ह्वै सिद्धिपद को सुदृष्टि देतु है ॥
अविरतगुणथान आदि क्षीनमोह अन्त,
नवगुणथान थिति साधकको खेतु है ॥

सजम चिह्न विना साधक गुपतरूप,
त्यों त्यों परगट ज्यों ज्यों सजम सुचेतु है ॥ १ ॥
जैसै काहू पुरुषको कारण ऊरध पथ,
कारज स्वरूपी गढ भूमिगिरश्रृ ग है ।
तैसै साध्यपद देव केवल पुरुष लिंग,
साधक सुमति देवीरूप तियलिंग है ॥
ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
व्यवहार भेद देव देवी यह व्यग है ।
ऐसा साध्य साधक स्वरूप सूधो मोखपथ,
संतनको सत्यारथ मूढनको ढिंग है ॥ २ ॥
जाको भौनभषकूप मुकुट विवेकरूप,
अनाचार रासभ आरूढदुति गूझी है ।
जाके एक हाथ परमारथ कलश दूजे,
हाथ त्याग शकति बोहारी विधि बूझी है ।
जाके गुणश्रवण विचार यहै बासी भोग,
औपन भगतिरसरागसों अरूझी है ॥
सो है देवी शीतला सुमति सूझै सतनको
दुरबुद्धि लोगनको रोगरूप सूझी है ॥ २ ॥
कूपसों निकस जबभूपर उदोत भई,
तब और ज्योति मुख ऊपर विराजी है ।
भुजा भई चौगुणी शकति भई सौगुणी,
कजाय गए औगुणी रजायछिति छाजी है ॥

यहै जगमाता अनुकंपारूप देखियत,
यहै देवी सुमति अनेकभांति बरनी ॥ ७ ॥
यहै सरस्वती हंसवाहिनी प्रगट रूप,
यहै भवभेदिनी भवानी शंभुघरनी।
यहै ज्ञान लच्छनसों लच्छमी विलोकियत,
यहै गुणरतनभंडार भारभरनी
यहै गंगा त्रिविधि विचारमें त्रिपथ गौनी,
यह मोखसाधन को तीरथ की धरनी।
यहै गोपी यहै राधा राधै भगवान भावै,
यहै देवी सुमति अनेक भांति बरनी ॥ ८ ॥
यहै परमेश्वरी परम ऋद्धि सिद्धि साधै,
यहै जोग माया व्यवहार द्वार दरनी।
यहै पद्मावती पद्म ज्यों अलेप रहै,
यहै शुद्ध शकति मिथ्यात को कतरनी ॥
यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासन में,
यहै अखंडित शिवमहिमा अमरनी।
यहै रसभोगनी वियोग में वियोगिनी है,
यहै देवी सुमति अनेकभांतिवरनी ॥ ६ ॥

॥ इति श्री नवदुर्गा विधान ॥

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते,

दोहा

काहू दिन काहू समय करुणाभाव समेत।
सुगुरु नामनिर्णय करै, भविक जीव हितहेत ॥ १ ॥
जीव द्विविधि संसार मैं अथिररूप थिररूप।
अथिर देहधारी अलख थिर भगवान अनूप ॥ २ ॥

कवित्त (३१ वर्ण)

जो है अविनाशी वस्तु ताको अविनाशी नाम
विनाशीक वस्तु ताको नाम विनाशीक है।
फूल मरै वास जीवै मरै भ्रमरूपी बात
दोऊ मरै दोऊ जीवै यह बात ठीक है ॥
अनादि अनंत भगवंत को सुजस नाम
सत्यसिंधु सास्वत सत्य तहकीक है।
अवतरै मरै भी मरै जे फिर फिर देह
तिनको सुजस नाम अथिर अलीक है ॥ ३ ॥

दोहा

थिर न रहै नर नाम की, अथिर कथा असरेस।
तिसे पर मिथ्यामती ममता करै विसेस ॥ ४ ॥

कवित्त

जग मैं मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव,
भ्रम के प्रवाह मैं बह्यो है आगे बहैगा।

नाम राखिवे को महारंभ करै दंभ करै,

यों न जानै दुर्गति में दुःख कौन सहैगा।

बार बार कहैं मोह भागवत धनवत्त,

मेरा नाव जगत में सदाकाल रहैगा।

याही ममता सों गहि आयो है अनंत नाम,

आगें योनियोनि में अनत नाम गहैगा ॥ ५ ॥

दोहा

बोल उठैं चित च कि नर, सुनत नामकी हाक।

षहै शब्द सतगुरु कहैं है भ्रमकूप धमाक ॥ ६ ॥

कवित्त

जगत में एक एक जनके अनेक नाम,

एक एक नाम देखिये अनेक जनमें।

वा जनम और या जनम और आगें और

फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें ॥

कोई कलपना कर जोई नाम धरै ताको,

सोई जीव सोई नाम मानें तिहूँ पन मे।

ऐसो विरतत लख सतसों सुगुरु कहै,

तेरो नाम भ्रम' तू विचार देख मन में ॥ ७ ॥

दोहा

नाम अनेक समीप तुव, अग अग सव ठौर।

जासों तू अपनो कहै, सो भ्रमरूपी और ॥ ८ ॥

नाम राखिवे को महारंभ करै- दंभ करै,

यों न जानै दुर्गति में

बार बार कहैं मोह

मेर

याही ममता सें

बोल उठे

बढै श

जग

ब

प्रभु सेवा बस करिय, सोमवन्ती धन दिन्न ॥
कुमति प्रेम बस करिय, साधु आदर बस मानिय ।
महाराज गुणगान प्रभु समरस मनमानिय ॥
गुणनन गीत रसलौ रसिक, विद्या बल बुधि मन हरिय ।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय ॥ ३ ॥

आलस समुपद लहै, काम आतुर कलंक पद ।
लोभी भयवश लहै, असनलालची लहै गद ॥
अमत लहै निपात दुष्ट परदोष लहै तकि ।
कुमन विकलता लहै लहै संशय जु रहे चकि ॥
अपमान लहै निर्धन पुरुष, ज्वार बहु संकट सहै ।
जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता लहै ॥ ४ ॥

शिथिल मूल दिढ़ करै, फूल चूंटै जलसींचै ।
ऊरध डार नवाय, भूमिगत ऊरध खींचै ।
जे मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधारइ ।
कूड़ा कटक गलित पत्र, बाहिर चुन डारइ ॥
लघु वृद्धि करइ भेटै जुगल थाहि सँवारै फल भलै ।
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै संपति अलै ॥५॥

मूढ मसकती तपी दुष्ट मानी गृहस्थ नर ।
नरनायक आलसी, विपुल धनवंत कृपण कर ॥
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अधरम रत ।
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेशहत ॥
रोगी दरिद्रपीड़ित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित ।
एते विडम्ब संसारमें, इन सब कहँ धिक्कार नित ॥ ६ ॥

प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तहिं धन दिजय
युवति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय
महाराज गुणकथन वधु समरस सनमानि
गुरुनमन शीस रससों रसिक, विद्या बल बुधि
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश
जाचक लघुपद लहै, काम आतुर कलंक प
लोभी अपजस लहै, अमनलालची लहै गद
उन्नत लहै निपात दुष्ट परदोष लहै त
कुमन विकलता लहै लहै संशय जु रहै चकि
अपमान लहै निर्धन पुरुष, ज्वार बहु सकट सां
जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता
शिथिल मूल दिढ करै, फूल चूटै जलसीं
ऊरध डार नवाय, भूमिगत ऊरध खींचै
जे मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधार
कूडा कटक गलित पत्र, बाहिर चुन डारइ
लघु वृद्धि करइ भेदै जुगल बाढ़ संवारै
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै सप
मूढ़ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ न
नरनायक आलसी, विपुल धनवत कृपण कर
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अधरम र
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेशहत
रोगो दरिद्रपीड़ित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित
एते विडम्ब ससारमें, इन सब कहँ धिक्कार ि

अक्षतसों जिन पूजतैं अक्षय गुणपरकाश ॥ ५ ॥
नैवेद्य—परम भाव नैवेद्य विधि क्षुधाहरण तन पोष ।
जिनपद नैवेद्यसों मिटहिं क्षुधादिक दोष ॥ ६ ॥
दीपक—आपा पर देखै सकल निशिमें दीपक होत ।
दीपकसों जिन पूजतैं, निर्मलज्ञान उद्योत ॥७॥
धूप—पावक दहै सुगंधिको धूप कहावै सोय ।
खेवत धूप जिनेशको कर्म दहन तब होय ॥८॥
फल—जो जैसी करनी करै सो तैसा फल लेय ।
फल पूजा जिनदेवकी निश्चय शिवफल देय ॥९॥
अर्घ—यह जिन पूजा अष्टविधि कीजे कर शुचि अंग ।
भविपूजा व्यवहारमें दीजे अर्घ अभंग ॥१०॥

इति अष्टप्रकार जिन पूजन

अथ दशदानविधान लिख्यते

गो सुवर्ण दासी भवन, गज तुरंग परधान ।
कुलकलत्र तिल भूमि रथ ये पुनीत दशदान ॥१॥
अब इनके विवरण कहूँ भावितरूप बखानि ।
व्यवहारीति अशुभकथा जो समझै सो ज्ञानि ॥२॥

चौपाई ।

गो कहिये इन्द्री अभिधाना । बछरा कर्मंग भोग पय पाना ।
जा इसके रसमाहिं न राचा । सो समकित गोदानी साँचा ॥

भुजबलसमर्थ मडन छमा, गृहपति मडन विपुल धन ।
मडन सिद्धान्त रुचि सन्त कहँ, कायामडन लखन घन

ज्ञानवन्त हट गहै, निधन परिवार बढ़ावै ।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक है धावै ॥
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै ।
पंडित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमानै ॥

कुलवत पुरुष कुलविधितजै, बंधु न मानै बधुहित ।
सन्यासधार धन संग्रहै, ए जगमें मूरख विदित ॥

इति श्रीनवरस कवित्त

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

दोहा ।

जलधारा चन्दन पुहुप, अछत अरु नैवेद ।
दीप धूप फल अर्घयुत, जिनपूजा वसुभेद ॥१॥

जल-मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह स्वभाव जलम
जलसों जिनपद पूजतें, कृतकलङ्क मिट जाहिं ॥

चन्दन-तप्तवस्तु शीतल करै, चन्दन शीतल आप ।
चन्दनसों जिन पूजतें, मिटै मोह सताप ॥ ३ ॥

पुष्प-पुष्प चापधर पुष्पशर, धारै मनमथ वीर ।
यातें पूजा पुष्पकी, हरै मदनशरपीर ॥ ४ ॥

अथ दश बोल लिख्यते

चौपाई।

जिनकी भांति कहौं समुझाई। जिनपद कहा सुनो रे भाई॥
धर्म स्वरूप कहावै ऐसा। सो जिनधर्म बखानी जैसा॥१॥
आगम कहो जिनागम सांचा। बरनौं वचन और जिन वाचा॥
मत भाषौं जिनमत समुझाऊं। ये दश बोल बनारस गाऊं॥२॥

जिन-दोहा।

सकल कर्मबंधक रहित सहित अनन्तचतुष्ट।
जोगी जोगातीत मुनि सो जिन आतम पुष्ट॥३॥

जिनपद।

विधि निषेध जानै नहीं जहँ अखंड रस पान।
विमल अवस्था जो धरै, सो जिनपद परमान॥४॥

धर्म।

कहिये वस्तु अवस्तुमें, यथा अवस्थित बोध।
जो स्वभाव जामें सधै धर्म कहावै सोध॥५॥

जिनधर्म।

पुरुष प्रमाण परंपरा वचन बीज विस्तार।
धरै धर्मकी धमकता, यह आगम की धार॥६॥

जिनआगम।

जहां द्रव्य षट तत्त्व नव, लोकालोक विचार।
विवरण करै अनंत नय सो जिन आगम सार॥७॥

कनक सुरग सु अक्षर षानी। तीनों शब्द सुवर्ण कहानी॥
ज्यों त्यागै तीनहुँकी साता। सो कहिये सुवरण को दाता॥४॥
पराधीन पररूप गरासी। यों दुर्बुद्धि कहावै दासी॥
ताकी रीति तजै जब ज्ञाता। तब दासीदातार विख्याता॥५॥
तन मन्दिर चेतन घरवासी। ज्ञान दृष्टि घट अन्तरभासी॥
समझै यह पर है गुण मेरा। मन्दिरदान होहि तिहिं वेरा॥६॥
अष्ट महामद धुरके साथी। ए कुकर्म कुदशाके हाथी॥
इनको त्याग करै जो कोई। गजदातार कहावै सोई॥७॥
मनतुरंग चढ़ ज्ञानी दौरइ। लखै तुरंग औरमैं औरइ॥
निज दृगको निजरूप गहावै। सो तुरगको दान कहावै॥८॥
अविनाशी कुलके गुण गावै। कुल कलित्र सद्बुद्धि कहावै॥
बुद्धि अतीत धारणा फैली। वहै कलत्रदान की सैली॥९॥
ब्रह्मविलास तेल खलि माया। मिश्रपिंड तिल नाम कहाया॥
पिंडरूप गहि द्विविधा मानी। द्विविधा तजै सोइ तिलदानी॥१०॥
जो व्यवहार अवस्था होई। अन्तरभूमि कहावै सोई॥
तज व्यवहार जो निश्चय मानै। भूमिदानकी विधि सो जानै॥११॥
शुकल ध्यान रथ चढ़ै सयाना। मुक्तिपन्थ को करै पयाना॥
रहै अजोग जोगसों यागी। वहै महारथ रथको त्यागी॥१२॥

ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवशासनमूल।
ज्ञानवन्त सूक्षम गहै, मूढ़ विचारै थूल॥१३॥
ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान।
रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन॥१४॥

इति दशदानविधान

मेरे आंगन बिरख लगायो बिना पवन लहकाई।
रुचि डाल बड़ पात सघनतों छाई सीतलके छाई ॥ ४ ॥
बोले सखी बात मैं समुझी कहूँ बनै अब या है।
तारे पर अम्बरपटमाफक, अद्भुत बिरछा सो है ॥ ५ ॥
ऊंची डाल चेतना उद्धत बहे पात गुन भारी।
ममता बात गात नहीं परसे लखनि छाह छव नारी ॥ ६ ॥
उदय सुभाव पाव पद चञ्चल पानै हत अम डोले।
कबहूँ घर कबहूँ घर बाहिर, सहज सरूप कलोले ॥ ७ ॥
कबहूँ मिश्र संपति भाक्षैं कबहूँ परसे माया।
जब तनको त्यौनार करै तब परी सीति पर छाया ॥ ८ ॥
तारे हिये अबद यो भावे ही सुजान वह चेरी।
कहे सखी सुन दीनदयाली बड़े हिमाची तेरी ॥ ९ ॥

दोहा

हिय आंगनमें प्रेम तरु, सुरति क्यार गुणपाल।
मगनरूप है लहलहै, बिना धनगुणकाल ॥ १० ॥
मरमभान मोख्म भयो सरस भूमि चितमाहिं।
तेरा दशा इक सम भई बढ़े सोनपर नाहिं ॥ ११ ॥

इति पदेषु।

अथ प्रश्नोत्तरदोहा लिख्यते।

प्रश्न—कौन वस्तु वपु माहिं है कहाँ आवै कहाँ जाय।

वचन ।

कहु अक्षर मुद्रा धरै, कहूं अनक्षर धार ।
मृषा सत्य अनुभय उभय, वचन चार परकार ॥८॥

जिनवचन ।

जाकी दशा निरक्षरी, महिमा अक्षर रूप ।
स्यादवादजुत सत्यमय, सो जिनवचन अनूप ॥६॥

मत ।

थापै निजमतकी क्रिया निन्दै परमत रीति ।
कुलाचारसौं बँधि रहै यह मतकी परतीति ॥१०॥

जिनमत ।

अर्हत् देव सुसाधु गुरु, दया धर्म जहँ होय ।
केवल भाषित रीति जहँ, कहिये जिनमत सोय ॥११॥

इति दशबोल

अथ पहेली लिख्यते.

कहरानामाकी चाल

कुमति सुमति दोऊ व्रजवनिता, दोउको कन्त अवाची ।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासौं राची ॥१॥
यह सुबुद्धि आपा परिपूरण, आपापर पहिचानै ।
लख लालनकी चाल चपलता, सौतसाल उर आनै ॥ २ ॥
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली ।
काहू समय पाय सखियनसौं, कहै पुनीत पहेली ॥ ३ ॥

समता कैसी दान कहा कहा तितिक्षा भाव ।
धीरज ज्ञान सु तप कहा, कहा सुभट विख्यात ॥ २ ॥
कहा सत्यव्रत है कहा, शौच त्याग मन शुद्ध ।
कहा इन्द्रिया भक्ति कहा, कहा दया सदबुद्ध ॥ ३ ॥
कहा लाभ विद्या कहा लज्जा लक्ष्मी गूढ़ ।
सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पंडित को मूढ़ ॥ ४ ॥
पंथ कुपथ क्यों कहा, स्वर्ग नरक कितौन ।
को बंधव अरु गृह कहा धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥
कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहिं ।
ये सब प्रश्न विचार मन कही मधुप हरिपाहिं ॥ ६ ॥
नारायण उत्तर कहैं सुनु उद्धव मम बात ।
बारह यम बारह नियम कहूं तोहि समुझाय ॥ ७ ॥
दया सत्य थिरता क्षमा अभय अचौर्य सुमौन ।
लाज असंग्रह आस्तिकत्व, संग त्याग तियगौन ॥ ८ ॥
हरि पूजा संतोष गुरु, भक्ति होम उपकार ।
जप तप तीरथ त्रिविधि शुचि श्रद्धा अतिथि अहार ॥९॥

सोरठा ।

कहे भेद चौबीस भिन्न २ यम नियमके ।
रहे प्रश्न चौबीस, तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १० ॥
समता नाम सुधारस पीजे । यम इन्द्रियनको निग्रह कीजे ॥
सन्मुखसहन तितिक्षा धीरज । रसना मदन जीतबो धीरज ॥ ११ ॥
दान अभय कहुँ दंड न दीजे । तप कामनानिरोध कहीजे ॥
अन्तरविभ्रमसूरता सांची । सत्यसम दरसन निरबाची ॥ १२ ॥

उत्तर—चिदानंद वपुमांहि है, भ्रममहिं आवै जाय।
ज्ञान प्रकट आपा लखैं, आपमांहिं ठहराय ॥ २ ॥
प्रश्न—जाको खोजत जगत जन, कर कर नानाभेष।
ताहि बतावहु, है कहाँ, जाको नाम अलेप ॥ ३ ॥
उत्तर—जग शोधत कछु औरको, यह तो और न होय।
यह अलेख निरभेप मुनि, खोजन हारा सोय ॥ ४ ॥
प्रश्न—उपजै विनसै थिररहै, वह अविनाशी नाम।
भेदी तुम भारी भला!, मोहि बताचहु ठाम ॥ ५ ॥
उत्तर—उपजै विनसै रूप जड़, वह चिद्रूप अखंड।
जोग जुगति जगमें लसै, बसै पिण्ड ब्रह्मंड ॥ ६ ।
प्रश्न—शब्द अगोचर वस्तु है, कछु कहौं अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहो सुजान ॥ ७ ॥
उत्तर—शब्द अगोचर कहत हैं, शब्दमाहिं पुनि सोय।
स्याद्वाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥
प्रश्न—वह अरूप है रूपमें, दुरिकै कियो दुराव।
जैसें पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव ॥ ९ ॥
उत्तर—हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहिं।
है अनादि ज्यों खानिमें, कंचन पाहनमाहिं ॥ १० ॥
इति प्रश्नोत्तर दोहा।

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते।

नमत शीस गोविन्दसों, उद्धव पूछत एम।
कै विधि यम कै विधि नियम, कहो यथावत जेम ॥ १ ॥

समता कैसी रन कहा, कहा तितिक्षा भाव ।
धीरज दान सु तप कहा, कहा सुभट विवसाय ॥ २ ॥
कहा सत्यरति है कहा सौच त्याग धन शुद्ध ।
कम दरिद्रता बलि कहा, कहा दया स्वर्गसिद्ध ॥ ३ ॥
कहा काम विधा कहा लज्जा अकसी गूढ़ ।
सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पंडित को मूढ़ ॥ ४ ॥
पंथ कुपंथ कहो कहा, स्वर्ग नरक निर्वीम ।
को बंधव अरु गृह कहा धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥
कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग मांहि ।
ये सब प्रश्न विचार मन कही मधुप हरिपांहि ॥ ६ ॥
नारायण उत्तर कहै सुन उद्धव मन लाय ।
अन्तरा यम अन्तरा नियम कहूं तोहि समुझाय ॥ ७ ॥
दया सत्य विरता क्षमा अभय अचौर्य सुसील ।
ज्ञान असंग्रह आस्तिकत, संग त्याग विपरीत ॥ ८ ॥
हरि पूजा संतोष गुरु भक्ति होम उपकार ।
जप तप तीरथ त्रिविधि शुचि श्रद्धा अतिथि अहार ॥९॥

सोरठा ।

कहे भेद चौबीस भिन्न २ यम नियमके ।
रहे प्रश्न चौबीस तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १ ॥
समता ज्ञान सुधारस पीजे । पथ इन्द्रियनको निग्रह कीजे ॥
सहजसहन तितिक्षा धीरज । रसना मदन जीतबो धीरज ॥ ११ ॥
दान अभय कहँ दंड न दीजे । तप कामनानिरोध कहीजे ॥
अन्तरविषयसूरता सांची । सत्यवचन पर्यीम निरवाची ॥ १२ ॥

रतु अनक्षरी ध्वनि जहँ होई । करम अभाव शौचविध सोई ॥
त्याग परम सन्यास विधाना । परम धरम धन इष्ट निधाना ॥१३॥

ध्रुव धारणा यज्ञकी करनी । हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥
प्राणायाम बोधवल अक्षा । दया अशेष जन्तुकी रक्षा ॥ १४ ॥

लाभ भावशुभगतिपरकाशा । विद्या सो जु अविद्यानाशा ॥
लाज कुकर्म गिलानि कहावै । लक्ष्मी नाम निराशा पावै ॥ १५ ॥

सुखदुखत्यागबुद्धि सुखरेखा । दुख विपयारस भोगविशेखा ॥
पंडित बंध मोक्ष जो जानै । मूरख देहादिक निज मानै ॥ १६ ॥

मारग श्रीगुरु आगम भाषा । उतपथ कुधी कुमन अभिलाषा ॥
सुकृतिवासना स्वर्गविलासा । दुरित उछाह नर्क गतिवासा ॥ १७ ॥

बंधव हितू स्वर्ग सुख दाता । गृह मानुपी शरीर विख्याता ॥
धनी सो जु गुणरत्नभंडारी । सदा दरिद्री तृष्णाधारी ॥ १८ ॥

कृपण सो जु विषयारसलोभी । ईश्वर त्रिगुणातीत अक्षोभी ॥
बहुत कहा लगि कहौं विचक्षण । गुण अरु दोष दोहुके लक्षण ॥१९॥

दोहा ।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहावै सोय ।
गुण अरु दोष जहा नहीं, तहा गुन परगट होय ॥ २० ॥
इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धवहरिसवाद ।
भाषा कहत "बनारसी" 'भानु' सुगुरुपरसाद ॥ २१ ॥

इति प्रश्नोत्तरमालिका ।

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते ।

दोहा ।

चेतनरूप निश्चनय सबै जीव इकसार ।
मूढ़ विचक्षण परमसों त्रिविधि रूप व्यवहार ॥ १ ॥

मूढ़ आतमा एक विधि त्रिविधि विचक्षण जान ।
द्विविधि मान परमातमा षट्विधि जीव बखान ॥ २ ॥

विधि निषेध जाने नहीं हित अनहित नहीं सूझ ।
विषयमगन तन लीनता, यहै मूढ़की बूझ ॥ ३ ॥

जो जिनभाषित सरदहै, भ्रम संशय सब खोय ।
समकितवंत असंजमी अधम विचक्षण होय ॥ ४ ॥

वैरागी त्यागी दमी स्वपर विवेकी होय ।
देशसंजमी संजमी मध्यम पंडित होय ॥ ५ ॥

अप्रमाद गुणथानसों, क्षीणमोहलों और ।
श्रेणिधारा जो धरै, सो पंडित सिरमौर ॥ ६ ॥

जो केवल पद आचरै चहि सयोगिगुणथान ।
सो जंगम परमातमा भववासी भगवान ॥ ७ ॥

सिद्धिपदमें सकलपद मगन ज्यों जलमें जल गुण ।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरगुण ॥ ८ ॥

इति अवस्थाष्टक ।

अथ षट्दर्शनाष्टक लिख्यते.

शिवमत बौद्ध रु वेदमत, नैयायिक मतदक्ष ।
मीमासकमत जैनमत, षटदर्शन परतक्ष ॥ १ ॥

शैवमत ।

देव रुद्र जोगी सुगुरु, आगम शिवमुख भाख ।
गनै कालपरणति धरम, यह शिवमतकी साख ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाखड़ी, जगत वस्तु छिन औध ।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत बौध ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष ।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेष ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुष, गुरु सन्यासी होय ।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायिक मत सोय ॥ ५ ॥

मीमासकमत ।

देव अलख दरवेश गुरु, मानै कर्म गिरथ ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमासक पथ ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थंकर गुरु यती, आगम केवलि नैन ।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७ ॥

ए अष्टमद हे भेदसों मये ब्रूट कछु और ।
मतिपोड़स पाखंडसों दशा कथानये और ॥ ८ ॥

इति परदर्शनाष्टक

अथ चातुर्वर्ण्य लिख्यते

जो निश्चय मारग गहै रहै ब्रह्म गुणलीन ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै सो 'ब्राह्मण' परवीन ॥ १ ॥
जो निश्चय गुण जानके, करै शुद्ध व्यवहार ।
जीतै सेना मोहकी सो 'क्षत्री' भुजभार ॥ २ ॥
जा जानै व्यवहार नय दृढ़ व्यवहारी होय ।
शुभ करणीसों रम रहै, 'वैश्य' कहावै सोय ॥ ३ ॥
जो मिथ्यामत आदरै रागद्वेषकी खान ।
विनविवेक करणी करै शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
चार भेद करतूतिसों ऊंच नीच कुलनाम ।
और वर्णसंकर सबै जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्ण ।

अथ अजितनाथजी के छंद

गोवमगणधरपय नमो सुमरि सुगुरु 'रविचन्द' ।
सरसुति देवि प्रसादकरि, गाऊं अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द.

श्री अवध्यापुर देश सुहायाजी।
राजै तहं जितशत्रू रायाजी॥
राया सुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तसु घरै।
तसु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सूचित अवतरै॥
तब जन्म उत्सव करहिं वासव, मधुर धुनि गावहिं सुरी।
आनन्द त्रिभुवन जन 'बनारसि' धन्य श्रीअवध्यापुरी॥ २॥

महियल राजिद्द अजित जिनदाजी।
गज वर लच्छन निर्मल चंदाजी॥
चन्दा उदित इक्ष्वाक वंशहि, कुमति तिमर विनासिये।
सय साठ चार सुचाप परिमित, देह कंचन भासिये॥
दिढ़ पालिराज सु गहिय संजम मुकति पथ रथ साजियो।
उत्पन्न केवल सुख "बनारसि" अजित महियल राजियो॥ ३॥

गढ योजनमहि रचें सुदेवाजी।
अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी॥
सेवहिं अशोक प्रसून वरसत, दिव्यधुनि तहं गाजहीं।
चामर सिंहासन प्रभामण्डल छत्र तीन विराजहीं॥
नवदेव दुंदभि सभा बारह, चौतिसौं अतिशय सही।
सुर असुर किन्नरगण 'बनारसि' रचित गढ़ योजन मही॥ ४॥

लक्ष बहत्तरि पूरब आया जी।
भोग सु जिनवर शिवपद पायाजी॥
शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो।
वरणे शिखैराबाद मंडन, भविक जनमनरंजनो॥

सोलैसै सत्तर समय फागुन, मास सितपक्ष बारसी।
विनवत गुरु पद जोर सेवक, सिरीमाल 'बनारसि' ॥ ५ ॥

इति श्रीजिनविलास के छन्द.

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति

वासीमरकार राग के चरचरी ढाल।

सहि एरी! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नहिं घरे।
सहि एरी! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे ॥
चन्द जिवां मेरा वल्लभ सोहै नैन चकोरहिं सुक्ख करे।
जगज्योति सुहाई कीरतिछाई बहु दुख तिमिरवितान हरे ॥
सहु कालविनानी अमृतवानी अरु मृगका लांछन कहिए।
श्रीशान्ति जिनेशनरोत्तमको प्रभु आज मिला मेरी सहिए! ॥१॥
सहि एरी! तू परम सयानी सुघराणी रानी राजप्रिया।
सहि एरी! तू अति सुकुमारी वरनारी प्यारी प्राणप्रिया ॥
प्राणप्रिया लखि रूप अचंभा रति रंभा मन लाज रही।
अम्बलोल कुरंग कौंच करि केसरि ये सरि तोहि न होहि कही ॥
अनुराग सुहाग भाग गुण आगरि, नागरि पुन्यहिं लहिये।
जिहिं का तुम कन्त नरोत्तमका प्रभु धन्य सयानी सहिये! ॥२॥

दोहा।

विश्वसेन कुलकमलरवि अचिरा उर अवतार।
धनुष दु चालिस कनकतन वन्दहुँ शान्ति कुमार ॥३॥

त्रिभंगी छन्द (१०, ८, ८, ६)

गजपुर अवतारं, शान्ति कुमारं, शिवदातारं, सुखकारं ।
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमारं ॥
कृतअरिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं, जगसारं ।
परहित संसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्तारं, शिवधारं ॥ ४ ॥

सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश ।
तिनिगणवन्दित चरणजुग, वन्दहु शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥

श्रीशान्तिजिनेशं जगतमहेशं, विगतकलेशं भद्रेशं ।
भविकमलदिनेशं, मतिमहिशेशं, मदनमहेशं, परमेशं ॥
जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं चक्रेशं ।
भवजलपोतेशं, महिमनगेशं, निरुपमवेशं, तीर्थेशं ॥ ६ ॥

करत अमरनरमधुप जसु, वचन सुधारसपान ।
वन्दहु शान्तिजिनेशवर, वदन निशेश समान ॥ ७ ॥

वररूप अमानं, अरितमभानं, निरुपमज्ञानं, गतमानं ।
गुणनिकरस्थानं मुक्तिवितानं लोकनिदानं, सध्यानं ॥
भवतारनयानं कृपानिधानं, जगतप्रधानं, मतिमानं ।
प्रगटितकल्यानं, वरमहिमानं, शिवपददानं, मृगजानं ॥८॥

भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल ।
बन्दहु शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ६ ॥

भजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्तिविशालं, जनपालं ।
गतिविजितमरालं, अरिकुलकालं, वचनरसालं, वरभालं ॥
मुनिजलजमृणालं, भवभयशालं, शिवउरमालं, सुकुमालं ।

मथितस्मरमानं, त्रिभुवनपानं नयनविशालं गुणमालं ॥ १० ॥

छप्पय ।

हीर हिमाचल हंस, कुन्द शारदभ निशाकर ।
कीर्तिकम्बुविस्तार सार गुणगणरत्नाकर ॥
दुःकृति संतति नाश धर्मविधि विधिविदारण ।
मानमतंगजसिंह, मोहवनदहन सुधारण ॥
श्रीशान्तिदेव जय जिनमदन 'बनारसि' वन्दत चरण ।
भवतापहारिहिमकर परम शान्तिदेव जय शिवकरण ॥ ११ ॥

इति श्रीशान्तिनाथ जिनस्तुति

अथ नवसेनाविधान लिख्यते

वेसरी छन्द

प्रथमहिं पत्ति जघन्य दल जैन । तासों त्रिगुण कहावै सेन ॥
सेन त्रिगुण सेनामुख ठीक । सेनामुखसों त्रिगुण अनीक ॥ १ ॥
तीमे त्रिगुण वाहिनी सोइ । वाहनि त्रिगुण चमूदल होइ ॥
त्रिगुण वरूथनि दल परचंड । तासों त्रिगुण कहावै दंड ॥ २ ॥

दोहा ।

दंड कटक चतुरंग करहु सब अक्षौहिणी जान ।
इकगज रथ पायक सहित ये सब कटक बखान ॥ ३ ॥

पत्ति ।

एक मतंगज एक रथ तीन तुरंग प्रमान ।
सुभट पंच पायक सहित पत्ति कटक परवान ॥ ४ ॥

सेना। चौपाई.

नव तुरग रथ तीन सुभायक। हस्ती तीन पचदश पायक।
बल चतुरग और नहिं लेन। यह परवान कहावै सेन ॥ ५ ॥

सेनामुख।

सत्ताइस घौडे नव हाथी। पैंतालिस पायकनर साथी।
नवरथ सहित कटक जो होई। दल सेनामुख कहिये साई ॥ ६ ॥

अनीकनी।

मत्त मतग सात अरु बीस। पवन वेग रथ सत्ताईस।
अनुग एकसौ पैंतस ठीक। हय इक्यासी सहित अनीक ॥ ७ ॥

बाहिनी। आभानक छन्द।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने।
इक्यासी परमान महारथ राजने ॥
तीन अधिक चालीस तुरगम दोयसो।
अनुग चारसौपंच बाहिनी होय सो ॥ ८ ॥

चमू। गीता छन्द।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल।
है सातसो उन्तीस परमित, जातिवन्त रसाल ॥
जहँ सुभट बारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पच।
सो चमूदल चतुरग शोभित, सहित नर तिरजच ॥ ९ ॥

बिरूथिनी।

रथ सातसै उनतीस कुअर, सातसै उनतीस।
हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥
छत्तीससौ बलवत पायक, अधिक पैंतालीस।
सो है बरूथनि कटक दुद्धर, चटक सुन्दर दीस ॥ १० ॥

छन्द-रोला।

कुंजर दोय हजार एक सौ असी सात गनि।
जेते गज तेते प्रमान रथराज रहे बनि॥
नवसौ पैंतिस दसहजार पायक मर्यद बल।
पैंसठसै इकसठ तुरंग यह दंड नाम दल॥११॥

अक्षौहिणी-छप्पय।

गज इकईस हजार, आठ सौ सत्तर आजहिं।
रथ इकईस हजार, आठ सौ सत्तर सजहिं॥
एक लाख अरु नवहजार नर सुभट सुभायक।
तिस ऊपर तीनसौ अधिक पंचास सुपायक।
सोलह तुरंग पैंसठ सहस
छसौ अधिक और लिय।
इहिविधि अभंग चतुरंग दल,
अक्षौहिणी प्रमाण किय॥१२॥

इति नवसेना विधान

❁

अथ नाटक समयसारसिद्धान्त के पाठान्तर कलशोंका भाषानुवाद

मनहर ।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक,
दूसरो न और मैं ही करता करम को ।
अन्तर विवेक आयो आपापर भेद पायो,
भयो बोध गयो मिट भारत भरम को ॥
भासे छह द्रव्यनके गुण परजाय सब,
नाशे दुख लख्यो मुख पूरण परमको ।
करमको करतार मान्यो पुद्गल पिंड,
आप करतार भयो आतम धरमको ॥ १ ॥

दोहा ।

जीव चेतना सजुगत, सदाकाल सब ठौर ।
तातैं चेतनभावको, कर्ता जीव न और ॥ २ ॥

गीतिका

जे पूर्वकर्म्मउदयविषयरस,
भोगमगन सदा रहैं ।
आगम विषयसुख भोग वाञ्छहि,
ते न पचमगति लहैं ॥

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

मनहर ।

पूरव कि पश्चिम हो उत्तर कि दक्षिण हो,
दिशि हो कि विदिशा कहहु तहा धाइये ।
पढ़िये पढ़ाइये कि गढ़िये गढ़ाइये कि,
नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥
न्हाये विन खाइये कि न्हायकर खाइये कि,
खाय कर न्हाइये कि न्हाइये न खाइये ।
जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,
जिहि विधि जाने जाहु सो विधि वताइये ॥१॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगत की मरजाद,
पढ़िये शवद गढ़िये सु जड़ साज है ।
नाचिये सुचित्त चपलाय गाइये सुधुनि,
न्हाइये सुजन शुचि खाइये सुनाज है ॥
परको सजोग सुतो योग विषै स्वाद भोग,
दीजे लीजे मायासो तो भरम को काज है ।

चौरीके करनहार द्दारोके अशरमी ॥
मास के भखैया सुरापान के चखैया,
परवधूके लखैया जिनके हिये न नरमी ।
रोषके गहैया परदापके कहैया येते,
पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥ ५ ॥

मत्तगयन्द ।

सम्यक ज्ञान नहीं उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनावें ।
भौन तजें वनवास गहें सुख, मौन रहें तपसों तन जावें ॥
जोग अजोग कछू न विचारत मूरख लोगन को भरमावें ।
फैल करें वहु जैन कथा कहि, बैन विना नर जैन कहावें ॥ ६ ॥

धीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी ।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी ॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी ।
भाव कुटुम्ब सदा जिनके ढिग, यों मुनिको कहिये गृहवासी ॥ ७ ॥

मनहर ।

मानुष जनम लह्यो सम्यक दरश गह्यो,
अजहूँ विषै विलास त्याग मन बावरे ।
सपति विपति आये हरष विषाद छोड़,
ताही ओर पीठ ओढ जैसी बहै बावरे ॥
भौथिति निकट आई समता सुथाह पाई,
गयो है निघटि जल मिथ्यात डुबावरे ।
टूटैगो करम फाम छूटैगो जगत वास,

मुक्ताको स्वामी चन्द्र मूंगानाथ महीनन्द,
गोमेदक राजा राहु लीलापति शनी है।
केतु लहसुनी पुखराज राग देव गुरु,
पन्नाको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है॥
याही क्रम पीछे घेर दच्छिनावरत फेर,
माणिक सूरेरवीच प्रभु तिन मनी है।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठोर
कौनकैसे रूप नौ ग्रही अनूप बनी है॥ ११॥

बालक दशाकी मरजाद दश जाम लौं,
बीस लौं बढ़ति तीसलौं सुबुद्धि रही है॥
चालीस लौं चतुराई पंचास लौं बलताई,
साठ लग लोचनकी दृष्टि लहलही है॥
सत्तर लौं श्रवन असी लौं पुरुषत्व निन्या-
नवे लग इन्द्रिनकी सकति उमही है।
सौलों चित चेत एक सौ दशोत्तरलौं आउ,
मानुष जनम ताकी पूरी थिति कही है॥ १२॥

चौदह विद्याओंके नाम यथा—

छप्पय।

ब्रह्मज्ञान चातुर्यवान विद्या हय वाहन।
परम धरम उपदेश, बाहुबल जल अवगाहन॥
सिद्ध रसायन करन, साधि सुरमधुर गावन।
वर संगीत प्रमान, नृत्य वादित्र बजावन॥

व्याकरण पाठ मुख वेद पुनि, ज्योतिष चक्र विचारचित।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दशचार मित ॥ १४ ॥

छत्तीस पौन (जाति) के नाम कवित्त

शोखगर दरजी तंबोली रंगवाल ग्वाल
बढ़ई संगतरास तेली धोबी धुनियाँ।
कंदोई कहार काछी कुलाल कलाल माली,
कुन्दीगर कागदी किसान पटबुनियाँ ॥
चितेरा बंधेरा बारी लखेरा ठठेरा राज,
पटुवा छप्परबंध नाई भारभुनियाँ।
सुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर
धीवर चमार एही छत्तीस पउनियाँ ॥ १५ ॥

एक सौ अड़तालीस प्रकृति
वस्तु छन्द

सप्तप्रकृति सप्तप्रकृति तुरीय गुण थान।
तह तीन मनुष्यायुमई नवठाण छत्तीस जानहु।
दशमैं पुनि इक लोभ बारमैं सोलह खिपानहु।
बहत्तर तेरम नसै तेरह चौदम पवि।
एम तैहि अड़ताल सौ होय सिद्ध तोषैषि ॥ १६ ॥

छप्पय।

एक ज्ञान दुइ नीरि तीन रस चार न भासहु।
पंच जीव षटपक्ष धाव सम अष्ट निभासहु ॥
नव समारि दश बारि ग्य रमहि बारह भाषहु।

तेरह तिर चौदहँ चढ़त, पन्द्रह विलगावहु ॥
सोलहन मेटि सत्रह भजहु, अट्ठारह कहँ करहु छय ।
सम गणि उनीस वीसहिं विरचि, 'बानारसि' आनंद मय ॥१७॥

तात्पर्य—दोहा ।

शुद्ध आतमा एक जिन, राग द्वेष द्वय बंध ।
तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विकथा धंध ॥ १८ ॥
प्रबल पच इन्द्री सुभट, षट विधि जीवनिकाय ।
जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥
ब्रह्मचर्य्य की बाड़ि नव, दश मुनिधर्मविचार ।
ग्यारह प्रतिमा श्रावकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥
तेरह थानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ ।
पन्द्रह जोग शरीर के, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥
सत्रह विधि संयम सही, जीव समास उनीस ।
दोष अठारह जान सब, पुद्गलके गुण वीस ॥ २२ ॥

इति प्रस्ताविक फुटकर कविता.

अथ गोरखनाथ के वचन

चौपाई ।

जो भग देख भामिनी मानै । लिङ्ग देख जो पुरुष प्रमानै ॥
जो बिन चिह्न नपुंसक जोवा । कह गोरख तीनों घर खोवा ॥१॥
जो घर त्याग कहावे जोगी । घरवासीको कहै जु भोगी ।
अन्तरभाव न परखै जोई । गोरख [illegible] मूरख सोई ॥ २ ॥

ह मध्यहि को ज्ञान बखाने । पवन साध परमारथ मानै ।
रम तत्त्व के होहिं न मरमी । कह गोरख सो महा अधर्मी ॥३॥
गया जोर कहै मैं ठाकुर । माया गये कहावे चाकर ।
तपा त्याग होय जो कामी । कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥ ४ ॥
कोमल पिंड कहावे चेला । कठिन पिंडसों ठेला पेला ।
मूना पिंड कहावे पूरा । कह गोरख ए तीनों मूरा ॥ ५ ॥
येन परिचय को वस्तु विचारे । ध्यान अग्नि चिन्तन परजारे ।
ज्ञानमगन चित रहै अबोला । कह गोरख सो बाबा मोला ॥ ६ ॥
पुनरे बाबा चुनियाँ मुनियाँ । उलट भेषसों उलटी दुनियाँ ।
सतगुरु कहै सहजका पंथा । वाद विवाद करै सो अंधा ॥ ७ ॥

इति गोरखनाथ के वचन

अथ वैद्य आदि के भेद

वैद्यलक्षण

कर्म रोगकी प्रकृती पावे । यथायोग्य औषधि फरमावे ।
दरद आदिअन्तकी गति जानै । सो सुवैद्य मेरे मन मानै ॥ १ ॥

ज्योतिषीलक्षण

नवरस रूप मिलन पहिचानै । वारह रासि मावना मानै ॥
सहज संजमयत साधे सोई । ज्योतिषराज ज्योतिषी सोई ॥ २ ॥

वैष्णवलक्षण दोहा ।

विरहक योग भक्ता विरति मति सुद्ध शुचि आप ।
इन लक्षणसों वैष्णव समुझै हरि परताप ॥ १ ॥

जो हरि घट में हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैष्णव सोइ ॥ ४ ॥

मुसलमानलक्षण

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होय।
ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोय ॥ ५ ॥

गब्बर लक्षण

जो मन लावे भरमसों, परम प्राप्ति कहँ खोय।
जहँ विवेकको घर गयो, गबर कहावै सोय ॥ ६ ॥

एक रूप 'हिन्दू तुरुक' दूजी दशा न कोय।
मनकी द्विविधा मानकर, भये एकसों दोय ॥ ७ ॥
दोऊँ भूले भरम में, करें वचनकी टेक।
'राम राम' हिन्दू कहैं, तुर्क 'सलामालेक' ॥ ८ ॥
इनके पुस्तक बाचिये, वेहू पढ़ें कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे 'शोभा' 'जेब' ॥ ९ ॥
तिनको द्विविधा-जे लखें, रंग बिरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिये, घट घट अन्तर राम ॥ १० ॥
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहिर यह माहिं।
जब लग यह कछु ह्वै रहा, तब लग यह कछु नाहिं ॥११॥
ब्रह्मज्ञान आकाश में, उड़हिं सुमति खग होय।
यथाशक्ति उद्यम करहिं, पार न पावहिं कोय ॥ १२ ॥
गई वस्तु सोचै नहीं, आगम चिंता नाहिं।
वर्त्तमान वरतै सदा, सो ज्ञाता जगमाहिं ॥ १३ ॥

जो जिससे सुख संपदा, गये ताहि दुख होय।

जो धरती बहु तृणवती जरै अग्निसों सोय ॥ १४ ॥

धन पाये मन हरस है, गये करै चित शोक।

मोहन कर केहरि लखै, बरखनि केसो बोक ॥ १५ ॥

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिनमाहि।

इनकी संगति जे लगैं तिनहिं कहीं सुख नाहिं ॥ १६ ॥

जे मायासों राचिके मनमें राखहिं बोझ।

कै तो तिनसों कर' मलो कै बंगलको 'रोम ॥ ७ ॥

इस माया के कारणै जेर कटावहिं सीस।

ते मूरख क्यों कर सकैं, हरिभक्तनकी रीस ॥ १८ ॥

काम मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह।

मूल अजीरण व्याधिको मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥

जैसी मति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहिं।

पशु मूरख भूपर चलहिं, खग पण्डित नभमाहिं ॥ २० ॥

सम्यक्तकी सुक्रिया, करै न अपने परन।

पूरब कर्म उदोत है रस है नाहिं अमरत्व ॥ २१ ॥

जो महंत है ज्ञानबिन फिरे फुलाये गाल।

आप मत्त औरन करै सो कलिमाहिं कलाल ॥ २२ ॥

ज्यों पावक बिन मणि सरै करै यदपि पुर दाह।

त्यों अपराधी मित्रकी होय सजनको चाह ॥ २३ ॥

कर्ता जीव शरीर है, करै कर्म स्वयमेव।

यह तन कृत्रिम देहरा, तामें चेतन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहिं कर्त्ता विन प्रेम।
देह अकृत्रिम देहरा, देव निरंजन एम ॥ २५ ॥

भूमि यान धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार।
शयनासन चौपद द्विपद, परिग्रह दश परकार ॥ २६ ॥

खान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीस।
ये षट कर्म सबहिं करे, राजा रंक सरीस ॥ २७ ॥

रुचित वसन सुरुचित असन, सलिल पान सुख सैन।
बड़ी नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैन ॥ २८ ॥

चतुर्दश नियम

भिगै दरब तबोल पट, शील सचित्त स्नान।
दिशि अहार पान रु पुहुप, सयन विलेपन यान ॥ २६ ॥
शीलवन्त मडै न तन, अधि पद गहै न संत।
पिताजात न हनें पिता, सती न मारहि कत ॥ ३० ॥
कामी तन मंडन करै, दुष्ट गहै अधिकार।
जारजात मारहि पिता, असति हनें भरतार ॥ ३१ ॥
ज्ञानहीन करणी करै, यों निजमन आमोद।
ज्यों छेरी निज खुरहितें, छुरी निकासै खोद ॥ ३२ ॥
राजऋद्धि सुख भोगवें, ऐसे मूढ अजान।
महा सन्निपाती करहि, जैसें शरवत पान ॥ ३३ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग।
सतगुरु विन भागें नहीं, दोऊ जालिम रोग ॥ ३४ ॥
जे आशाके दास ते, पुरुष जगत के दास।

माया दासी नाथ की, जगत दास है तास ॥ ३५ ॥
संसारी व्यवहार सब, धरै रोक पर प्यार।
ज्ञानी रोक न आदरै, करै परम व्यवहार ॥ ३६ ॥
कारण कारज ना लखै, भेद अभेद न जान।
वस्तुरूप समुझै नहीं सो मूरख परधान ॥ ३७ ॥
देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार।
सांचे लीजे परखके, झूठे दीजे डार ॥ ३८ ॥
अष्टादशदूषणरहित, देव सुगुरु निर्ग्रंथ।
धर्म दया पूरणअपर,—मतअविरोधि सुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
मुनिकी वाणी जैनकी, जैन धरै मन ठीक।
जैनधर्म बिन जीवकी, जै न होय तहकीक ॥ ४० ॥
उपजै उर सम्यक्ता दृग दुष्टता न होय।
मिटै मोहभ्रमदुष्टता सहज शुद्धता सोय ॥ ४१ ॥

इति [illegible] कविता

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते।

एक जीवद्रव्य ताके अनंत गुण अनन्त पर्याय एक एक गुणके असंख्यात प्रदेश एक एक प्रदेशनिविषे अनन्त कर्मवर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषे अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु, एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनंत पर्यायसहित विराजमान. यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने एकजीव द्रव्य

अनत अनत पुद्गलद्रव्यकरि सयोगित (सयुक्त) मानने। ताको व्यौरौ,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति, अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्यकी परनति ताको व्यौरौ—

एक जीवद्रव्य जा भातिकी अवस्थालिये नानाकाररूप परिनमैं सो भाति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। वाकी और भाति। याहीभाति अनंतानत स्वरूप जीव द्रव्य अनन्तानत स्वरूप अवस्थालिये वर्तहिं। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य औरस्यौं मिलइ नाहीं। याही भाति एक पुद्गल परवानू एक समयमाहिं जा भातिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परवानू द्रव्यसौं मिलै नाहीं तातैं पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेत्रावगाही अनादिकालके, तामैं विशेष इतनौ जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवानू द्रव्य अनतानत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनताकार परिनमनरूप वधमुक्तिशक्ति लिये वर्त्तहिं।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामैं तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीवद्रव्यकी। ससारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहू अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य।

अशुद्धनिश्चय द्रव्यकौ सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यकौ सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यकौ सहकारी शुद्धव्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार कौ विवरण लिख्यते।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनौ जु यावत्काल संसारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिये, सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातैं जु संसार व्यवहार एकरूप दिखायौ, संसारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो संसारी।

अब तीनहू अवस्था कौ विवरण लिख्यते।

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकसौं द्वादशम गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार संसारावस्थित भाव
ताको विवरण कहै है—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नहीं जानतौ तातैं परस्वरूप विषै मगन होय करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमाणकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनौ कार्य नहीं मानतौ संतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपकौ ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है, ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए, केवलज्ञानी यथाख्यात-चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपकौ रमनशील है तातैं शुद्धव्यवहारी कहिए, जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए।

शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थानसौं लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहार।

अथ तीनहु व्यवहारको स्वरूप कहै है —

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। परन्तु विशेष इनको इतनौ जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहूविषै छतौ है इहा भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यौं नाहीं—जातैं संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्था के मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहा यह थापना कीनी है तातैं सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्त।

अथ आगमअध्यातमको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यातम कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरौ—आगमरूप कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताकौ व्यौरौ कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम भावरूप पुद्गलाकारआत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम—भावरूप ज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यातम दुहु पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता का दानी विचार—

अनंतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसैं—वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजै ताको विचार दीर्घ दृष्टिसौं कीजे तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वामैं वास्तवरूप बनो है अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसंयुक्त है फल फलनिविषै अनेक बीज होंय। या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। भी और सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अंतर्गर्भित वटवृक्षसंयुक्त होंहि। याही भांति एकवटविषै अनेक अनेक बीज एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजे तो भाविनयप्रमानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भांति अनंतताको स्वरूप जाननी। या अनंतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै—अनन्तका ओर अंत है ही नाहीं जो ज्ञानविषै भासै। तातैं अनन्तता अनन्तहीरूप प्रतिभासै या भांति आगम अध्यात्मकी अनन्तता जाननी. तामैं विशेष इतनी जु अध्यात्मको स्वरूप अनन्त आगमको स्वरूप अनन्तानंतरूप यथापना प्रमान करि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित। आगम अनन्तानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहू को स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलगोचर, अंशमात्र मति श्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी देशमात्र अवधिज्ञानी मनपर्यय ज्ञानी ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने।

मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेतैं यातैं जु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके बलकरि आगम अध्यातमको स्वरूप उपदेश-मात्र कहै परन्तु आगम अध्यातमको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानै नहीं। तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ तथाज्ञानी जीवको विशेषपणो और भी सुनो,—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै, मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातैं सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम अग एकान्तपनौ साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै अध्यात्म अगको व्यवहारै न जानै यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भांति सूझै काहेतैं ?—यातैं—जू आगम अग बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतौ संतौ आपकू मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित को अध्यात्मरूप क्रिया सौ अतर-दृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टि के अभावसौं अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी जीव मोक्ष-मार्ग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यक्दृष्टीको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—सशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। सशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो—जैसैं च्यार पुरुष काहु एकस्थानक विषै ठाढे। तिन्ह चारिहू के आगे एक सीपको खड किनही और पुरुषनै आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतैं प्रश्न कीनी कि यह कहा है सीप

है कै रूपो है प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो—कछु सुध नाहीन परत किधौं सीप है किधौं रूपा है मोरी दृष्टिविषै याकौ निरधार होत नाहिने । भी दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि—कछु मोहि यह सुधि नाहीं कि तुम सीप कौनसौं कहत है रूपो कौनसौं कहत है मेरी दृष्टिविषै कछु भासत नाहीं तातैं हम जांहिनै जानत कि तू कहा कहत है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाही गहलरूपसौं । भी तीसरो पुरुष विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तो प्रत्यक्षप्रमानरूपो है याकौ सीप कौन कहै मेरी दृष्टिविषै तो रूपो सूझत है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है सो तीनौं पुरुष तौ वा सीपका स्वरूप जान्यौ नाहीं । तातैं तीनौं मिथ्यावादी । अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमान सीपको खंड है यामैं कहा धोखो सीप सीप सीप निरधार सीप याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमान भ्रामक अथवा अंध तैसें सम्यग्दृष्टीकौ स्वपरस्वरूपविषै न संसै न विमोह न विभ्रम यथार्थदृष्टि है तातैं सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि कार मोक्षपद्धति साधि जानै । बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग साधै सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरणकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचो । मोक्षमार्गकौ साधिबोप है व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै । ऐसें निश्चय व्यवहारकौ स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै मूढजीव न जानैं न मानै । मूढ जीव बंधपद्धतिका साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाहीं । काहेतैं यातैं जु बंधके साधते बंध सधै मोक्ष सधै नाहीं । ज्ञाता जब कदाचित् बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसौं मेरो द्रव्य अनादिको बंधरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धतिसौं मोह

तौरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी त्यों है नर काहे करो ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै । यह ज्ञाताको आचार, याहीको नाम मिश्रव्यवहार ॥

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचारलिख्यते—

हेय-त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय-विचाररूप अन्यषटद्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरन रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरौ—गुणस्थानक प्रमान हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुनस्थानककी बढवारी कही है गुनस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमान क्रिया। तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होंहि तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्नसत्ताके प्रधानकरि एकता मिलै नाहीं। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परतु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलम्बनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै काहेतैं अवस्थाप्रवान परसत्तावलम्बक है। ज्ञानको परसत्तावलंबी परमार्थता न कहै। जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलम्बनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमित्तरूप नाना प्रकार के उदीकभाव होंहि। तिन्ह उदीकभावनको ज्ञाता तमासगीर।

न कर्ता न भोक्ता न चक्षदर्शी तातैं कोऊ यों कहै कि था भांतिके स्वीकभाव होहि सर्वथा तौ अज्ञानी गुनस्थानक कहिये सो झूठो। तिनि द्रव्यको स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यौ नाहीं। काहेतैं—यातैं जु और गुनस्थानकनिकी कौन बात चलावै केवलीके भी स्वीक भावनिकी नास्ताधता जानमी। केवलीके भी स्वीकभाव पनपे होय नाहीं। जबू केवलीकौं दंड कपाटरूप क्रिया तदे होय काहू कनकी कौं नाहीं। तौ केवलीविषे भी तदेकी नामास्ता है तो और गुनस्थानककी कौन बात चलावै। तातैं स्वीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाहीं ज्ञान स्वपरप्रमिभान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति ज्ञायक प्रमान ज्ञान स्वरूपाचरनरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनो। इन बातनको ब्यौरो कहांताई लिखिये कहांताई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहि। जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो बहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होइगो सो यह चिट्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगा नाहीं अव—वचनिका यथावत यथा सुमति प्रवान केवलिवचनानुसारी है। जो याहिसुनैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थवचनिका

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको ब्यौरो—निमित्त तौ संयोगरूप कारण उपादान वस्तुकी

सहज शक्ति। ताको ब्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको ब्यौरो-द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना. ताकी चौभगी प्रथम ही गुनभेद कल्पनाकी चौभगीको विस्तार कहौं सो कैसैं,—ऐसैं—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुन, सब गुन असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभगीको विचार एक तौ जीवकौ ज्ञानगुन दूसरो जीवको चारित्रगुन।

ए दोनौ गुण शुद्धरूप भाव जानने। अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको ब्यौरो—इन दुहूँकी गति शक्ति न्यारी २ न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताकौ ब्यौरैं,—ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परंतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको ब्यौरौ कहै हैं,—सकलेस विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परंतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पंचमगुणस्थानक पर्यन्त। यह तौ दुहुकौ गुण भेद न्यारा न्यारौ कियौ। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्र के आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा

अब आगमीक विचार—ज्ञानगुण निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको ब्यौरो—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान ताको ब्यौरो—सूक्ष्मदृष्टि देकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्चयरूप मिथ्यात्वकी बात नाहीं चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु ज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान संक्लेस रूप चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान संक्लेस चारित्र, जा समै अज्ञानरूप गति ज्ञानकी, संक्लेस रूप गति चारित्रकी तासमैं निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू समैं अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समैं ज्ञानरूप ज्ञान संक्लेसरूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समैं ज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप ताको ब्यौरो—ज्ञान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्र की शुद्धता कहिए। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये अब ताको विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषे काहू समैं जीवका ज्ञान गुण जाग रूप है तब कहा जानतु है? ऐसो जानतु है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मोसौं न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण। हौं मरूंगो ए इहां ही रहेंगे सो जानतु है। अथवा ए जाहिंगे

हीं रहू गो, कोई काल इन्हस्यौं मोहि एक दिन विजोग है ऐ
जानपनौं मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए पर
सम्यक् शुद्धता नाहीं गर्भितशुद्धता जब वस्तुको स्वरूप जानैं
सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाहीं परतु गर्भित शुद्ध
सौ भी अकाम निर्जरा है याही जीवको काहू समैं ज्ञान गुण अज्ञान
रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बध है याही भांति मिथ्यात्व
अवस्था विषै काहू समे चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातैं चारित्रा
वर्ण कर्म मद है। ता मदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण
सकलेशरूप है तातैं केवल तीव्रबध है। या भांति करि मिथ्या
अवस्थाविषै जासमै जानरूप ज्ञान है जौर विशुतारूप चारित्र है
ता समै निर्जरा है। जा समैं अजानरूप ज्ञान है सकलेस रूप चारित्र
है तासमैं वंध है तामैं विशेष इतनौ जु अल्प निर्जरा बहु बध, तातैं
मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसैं—काहू
पुरुषकौं नफो थोड़ो टोटौ बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए।
परंतु बध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाहीं। दृष्टान्त
ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद
अवस्थास्यौं व्यवहारराशि कौनके बल आवतो? उहां तौ ज्ञान
गुन अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातैं ज्ञानगुनको तौ
बल नाहीं। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि
चढतु है जीवद्रव्यविषै कषाइकी मदता होतु है ताकरि निर्जरा
होतु है। वाही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी। अब और भी
विस्तार सुनो—

हीं रहूगो, कोई काल इन्हस्यौं मोहि एक दिन विजोग है ऐसो जानपनौं मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए परन्तु सम्यक् शुद्धता नाहीं गर्भितशुद्धता जब वस्तुको स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रथिभेद विना होई नाहीं परतु गर्भित शुद्धता सो भी अकाम निर्जरा है वाही जीवको काहू समैं ज्ञान गुण अज्ञान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बध है याही भांति मिथ्यात्व अवस्था विपै काहू समे चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातैं चारित्रा वर्ण कर्म मद है। ता मदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्रगुण सकलेशरूप है तातैं केवल तीव्रबध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविपै जासमै जानरूप ज्ञान है जौर विशुतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समैं अजानरूप ज्ञान है सकलेस रूप चारित्र है तासमैं वंध है तामैं विशेष इतनौ जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातैं मिथ्यात अवस्थाविपै केवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा जैसैं—काहू पुरुषकौं नफो थोड़ो टोटौ बहुत सो पुरुप टोटाउ ही कहिए। परतु बध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविपै नाहीं। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यौं व्यवहारराशि कौनके बल आवतो? उहा तौ ज्ञान गुन अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातैं ज्ञानगुनको तो बल नाहीं। विशुद्धरूप चारित्र के बलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है जीवद्रव्यविपै कपाइकी मदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मदना प्रमान शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो—

यह चौभंगी क्रम क्रम पूरण भयी। प भइया कटकनावारे—मैं मिथ्यात्वमें शुद्धता मानी कि नाहीं जो तौ मैं मानी तो मुझ और भविककी कार्य नाहीं। जो मैं नाहीं मानी तौ तेरो द्रव्य याही भांति कौ परनयो है हम कहा करि हैं जो मानी तौ स्याबासि। यह तौ द्रव्यार्थिककी चौभंगी पूरन भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभंगी सुनी एक तौ वक्ता अज्ञानी श्रोता भी अज्ञानी सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निर्मित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथी वक्ता ज्ञानी श्रोता भ ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साधी।

इति निमित्त उपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका

अथ निमित्त उपादान के दोहे लिख्यत।

दोहा।

गुरुउपदेश निमित्त बिन उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव बिन चलवेको आधीन॥ १॥
हौं जानै था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन बिन पानीमांहि जहाज॥ २॥

ता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद बिना शुद्धतासौं जोर चलत नाहीं ? जैसें कोऊ पुरुष नदीमें डुबकी मारै फिर जब उछलै तब दैवजोगसौं ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तौ यद्यपि तारू पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै ? वाको जोर चलै नाहिं, बहुतेरा कलबल करै पै कछु बसाइ नाही, तैसैं विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भये मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण जथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धतामैं जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहा मोक्षमार्ग साध्यौ तहां कह्यौ कि "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" और यौं भी कह्यो कि "ज्ञानक्रिया भ्यां मोक्ष" ताको विचार—चतुर्थ गुणस्थानकस्यु लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यो ताकौ व्यौरौ, सम्यक्रूप ज्ञान धारा विशुद्धरूप चारित्रधारा दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं ज्ञानकी शुद्धता क्रियासौं क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामै शुद्धता है तौ जथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामैं ता न होती तो ज्ञान गुन शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यो तो नहीं वामैं शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहा कोई कहैगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाहीं। कोऊ गुन काहू गुनके सारै नहीं सब असहाय रूप है। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तौ अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातैं विशुद्धतामैं जथाख्यातको अश है तातैं

आप अकेला जनमै मरै ।
सकल लोककी ममता धरै या चेतनकी ॥ २ ॥
होत विभूति दानके दिये ।
यह परपंच विचारै हिये ।
भरमत फिरै न पावै ठौर ।
ठानै मूढ और की और, या चेतनकी ॥ ३ ॥
बंध हेतको करै जु खेद ।
जानै नहीं मोक्षको भेद ।
मिटै सहज संसार निवास ।
तब सुख लहै 'बनारसिदास', या चेतनकी ॥४॥

( )

राग रामकली—

चेतन तू तिहुंकाल अकेला,
नदी नाव संजोग मिलै ज्यों त्यों कुटुंबका मेला चेतन० ॥ टेक ॥
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला ।
सुख संपति शरीर जलबुदबुद विनशत नाहीं बेला चेतन० ॥ १ ॥
मोहमगन आतमगुन भूलत परि तोहि गलमेला ।
मैं मैं करत चहूं गति डोलत, बोलत जैसे छेला चेतन ॥ २ ॥
कहत 'बनारसि मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय होइ सहज सुरझेला चेतन ॥ ३ ॥

(३)

राग रामकली

मगन ह्वै आराधो साधो ! अलख पुरुष प्रभु ऐसा ॥ टेक ॥
जहाँ जहाँ जिस रससौं राचै तहाँ तहाँ तिस भेसा मगन० ॥ १ ॥

दोनो दोहों का उत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार ।

उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥

उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।

भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव ।

एक चक्रसौं रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन ।

ज्यों जहाज परवाह में, तिरै सहज विन पौन ॥ ६ ॥

उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश ।

बसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादान के दोहे

अथ अध्यातमपदपंक्ति लिख्यते,

(१)

राग भैरव

या चेतनकी सब सुधि गई ।

व्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक

है जडरूप अपावन देह ।

तासौं राखै परमसनेह, या चेतनकी० ॥ १ ॥

आइ मिले जन स्वारथबंध ।

तिनहिं कुटंब कहै जा बंध ॥

तासों कहै नांक ताके राखने को करै कांक,
लांक से खरग बांधि बांक धरै मन में ॥
कांच बांधे शिरसों सुमणि बांधै पायनि सो
जाने न गँवार कैसा मणि कैसा कांच है।
योंही मूढ़ झूठ में मगन झूठ ही को दौरे
झूठ बात माने पै न जाने कहा सांच है ॥
मणि को परखि जाने जौहरी जगत मांहीं,
सांच की समझ ज्ञान-लोचन की जांच है।
जहां को सुवासी सो तो तहां को मरम जाने
जाके जैसो स्वांग ताके तैसो रूप नाच है ॥

(६)

राग-विलावल।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये सुन मूरख प्रानी।
जैसे निरख मरीचिका मृग मानत पानी। ऐसैं ॥ १ ॥
ज्यों पकवान चुरैलका विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै भ्रम भूलत यों ही। ऐसैं ॥ ॥
देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करमकी, तैं निजकर जानी। ऐसैं ॥ ३ ॥
नाव कल्पति लोककी, सो तो नहीं सूझै।
जाति जगतकी कल्पना, तामें तू जूझै। ऐसैं ॥ ४ ॥
माटी भूमि पहारकी, तुह संपति सूझै।

सहज प्रवान प्रवान रूप मे, समैमे समैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधान मे लै सा, मगन० ॥ २ ॥
उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयमरूप उदै सा।
व्यवहारी व्यवहार करम मे, निहचै मे निहचै सा, मगन० ॥ ३ ॥
पूरण दशा धरै सपूरण, नय विचार मे तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा, मगन० ॥ ४ ॥
नाहीं कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तो है सा।
एक अनेक रूप ह्वै वरता, कहौं कहाँ लों कैसा, मगन० ॥ ५ ॥
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसेका तैसा, मगन० ॥ ६ ॥

(४)

दोहा।

जिन प्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माहिं।
पै जाके दूषण लगै, वदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥
मेटी मुद्रा अवधिसों, कुमती कियो कुदेव।
विघन अग जिनबिंबकी, तजै समकिती सेव ॥ २ ॥

(५)

अज्ञानी की दशा

रूप की न झाक हिए करम को डाक पिये,
　　　　ज्ञान दवि रह्यो मिरगाक जैसे घन में।
लोचन की ढाक सो न मानें सदगुरु हाक,
　　　　डोले मूढ रक सो निशक तिहूँपन में ॥
टक एक मास की डली सी तामे तीन फाक,
　　　　तीन को सो आक लिखि रह्यो कहूँ तनमें।

तासों कहै नांक ताके राखने को करे कांक,
कांक सो लहग बांधि बांक धरे मन में ॥
कौंच बांधे शिरसों सुमणि बांध पांयनि सो,
जाने न गँवार कैसा मणि कैसा कौंच है।
योंही मूढ़ झूठ में मगन झूठ ही को दौरे,
झूठ बात माने पै न जाने कहा सांच है॥
मणि को परखि जाने जौहरी जगत माहीं,
सांच की समझ ज्ञानलोचन की जांच है।
जहां को जुवासी सो तो तहां को मरम जाने
जापे जैसो स्वांग तापे तैसे रूप नाच है॥

(६)

राग—बिलावल।

ऐसें क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी।
जैसे निरख मरीचिका मृग मानत पानी। ऐसें ॥ १ ॥
ज्यों पकवान चुरैलका विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै भ्रम भूलत यों ही। ऐसें ॥ ॥
देह अपावन खेदकी अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करमकी, तैं निजकर जानी। ऐसें ॥ ३ ॥
नाव कहावति लोककी, सो तौ नहीं भूली।
जाति जगतकी कल्पना तामें तू झूली। ऐसें ॥ ४ ॥
माटी भूमि पहारकी तुझ संपति सूझै।

प्रगट पहेली मोहकी, तू तऊ न बूझै। ऐसैं० ॥५॥
तैं कबहू निज गुनविषै, निजदृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसों, अपनायत कीनी, ऐसैं० ॥६॥
ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूढ़त वन दौरै।
त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत औरै, ऐसैं० ॥७॥
करता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं।
ज्ञान विना सद्गुरु विना, तू समुझत नाहीं, ऐसैं०॥८॥

(७)

राग–बिलावल

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी।
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी, ऐसैं० ॥१॥
ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।
त्यों घट मे परमारथी, परमारथ साधै, ऐसैं० ॥२॥
जैसे वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।
तैसे पंडित पिंडकी, रचना निरवारै, ऐसैं० ॥३॥
पिंडस्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।
जानै मानै रवि रहै, घट व्यापक सोई ऐसैं० ॥४॥
चेतन लच्छन है धनी, जड लच्छन काया।
चचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया, ऐसैं ॥५॥
लच्छन भेद विलेच्छकों, सु विलच्छन वेदै,
सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै, ऐसैं० ॥६॥

ज्यों रसलोपे न्यारिया, धन सौं मनकी टेक।

त्यों मुनिकर्म विपाकमैं, अपने रस मैं पेखैं० ॥ ७ ॥

आप लखै जब आपको दुविधापद मेटै।

सेवक साहिब एक हैं, तब को किहिं भैंटै ? ऐसैं ॥ ८ ॥

(८)

राग—आसावरी।

तू आतम गुन जानि रे जानि,

साधु वचन मनि आनि रे आनि, तू आतम० ॥ १ ॥

भरत चक्रपति षटखंड साधि

भावना भावति लही समाधि तू आतम० ॥ २ ॥

प्रसनचंद्ररिषि भयो सरोष

मन फेरत फिर पायो मोष तू आतम ॥ ३ ॥

रावन समकित भयो उदास

तब बांध्यो तीर्थंकर गोत तू आतम ॥ ४ ॥

सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल

पहुँच्यो पंचमगति तिहि काल तू आतम ॥ ५ ॥

विष आहारकरि हिंसाचार,

गये मुकति निजगुण अवधार, तू आतम० ॥ ६ ॥

देखहु परतछ भृंगी ध्यान

करत कीट भयो ताहि समान तू आतम ॥ ७ ॥

कहत बनारसि बारबार

और न सोधि सुखाकार तू आतम० ॥ ८ ॥

राग—आसावरी ।

रे मन ! कर सदा सन्तोष,
जातैं मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥
बढत परिग्रह मोह बाढत, अधिक तृषना होति ।
बहुत इंधन जरत जैसैं अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥ २ ॥
लोभ लालच मूढजनसों, कहत कंचन दान ।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान, रे मन० ॥ ३ ॥
नारकिन के पाइ सेवत, सकुच मानत संक ।
ज्ञानकरि बूझै 'बनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥ ४ ॥

(१०)

राग—बरवा ।

बालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटि ।
अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटि, बालम ॥ १ ॥
हू तिक रहूँ जे सजनी रजनी घोर ।
घर करकेउ न जानै चहुदिसि चोर, बा० ॥ २ ॥
पिउ सुधियावत मनमें पैसिउ पेलि ।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, बा० ॥ ३ ॥
सवरौ सारदसामिनि औ गुरु भान ।
कछु बलमा परमारथ करौं बखान, बा० ॥ ४ ॥
काय नगरिया भीतर चेतन भूप ।
करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप, बा० ॥ ५ ॥

दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय ।
मिथ्या गमन समीकृत कंचन होय चा ॥ ६ ॥
चेतन चित चमत्कार सुगुरु उपदेश ।
प्रभु इक आगति ज्योति ज्ञान गुन लेस, चा ॥ ७ ॥
अथिररूप सब देखिसि छिन वैराग ।
चेतन आपुहि आप सुझावै जाग चा ॥ ८ ॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अपार ।
चार चोर घर मूसहिं सरवस तोर चा० ॥ ९ ॥
चेतन तुहुँ ममतावश कोअस्थित ।
निशिदिन करै अहेर अथामक घात चा ॥ १ ॥
चेतनहो तुहुँ चेतहु परम पुनीत ।
तजहु कनक अरु कामिनी होहु नचीत, चा ॥ ११ ॥
परेहु करमवस चेतन ज्यों नटकीस ।
कोउ न तोर सहाय छांडि जगदीस, चा ॥ १२ ॥
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष ।
राग दोष दुइ बंधन छूटत मोष चा ॥ १३ ॥
मायाजाल मैं चेतन सब जग जानि ।
तुहु सुभाव तुहु चाम्हु सचत सुजान चा ॥ १४ ॥
चेतन भयेहु अचेतन संगति पाय ।
चकमक मैं आगी देखी नहिं जाय चा० ॥ १५ ॥
चेतन तुहि लपटान पेमरस फंद ।
जास राजस घन तोपि विमलनिशिचन्द, चा ॥ १६ ॥

चेतन तोहि न भूल नरक दुख वास ।
अगनि थंभ तरुसरिता करपत पास, बा० ॥ १७ ॥

चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराउ ।
बाघ पाच ठग वेग तोर अब दाउ, बा० ॥ १८ ॥

देवजोनि सुख चेतन सुरग बसेर ।
ज्यों बिन नीव धौरहर खसत न बेर, बा० ॥ १९ ॥

चेतन नर तन पाय बोध नहिं तोहि ।
पुनि तुहु का गति होइहि अचरज मोहि, बा० ॥ २० ॥

आदि निगोद निकेतन चेतन तोर ।
भव अनेक फिरि आयेहु करहु न ओर, बा० ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल ।
छाडहु वेगि विचारि पापतरुमूल बा० ॥ २२ ॥

गरभवास तुहु चेतन ऊरध पाव ।
सो दुख देख विचार धरमचित लाव, बा० ॥ २३ ॥

चेतन यह भवसागर धरम जिहाज ।
तिह चढ बैठो छोड लोककी लाज, बा० ॥ २४ ॥

दह या दुहु अब चेतन होहु उचाट ।
कह या जाउ मुकतिपुरि संजम बाट, बा० ॥ २५ ॥

उधवागाय सुनायेहु चेतन चेत ।
कहत 'बनारसि' थान नरोत्तम हेत, बा० ॥ २६

(११)

राग—[illegible]

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगतसौं जड़ता व्यापी निज गुन सकल टले चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसौं विरचि ठगनिसौं राचे, मोह पिसाच छले। हँसि हँसि फंद सवारि आप ही, मेलत आप गले, चेतन ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद सिंधुतैं फिर तिह पंथ टले। कैसैं परगट होय आग जो दबी पहारतले, चेतन० ॥३॥ भूले भवभ्रम बीचि 'बनारसि' तुम सुरज्ञान भले। धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढ़ि बैठे ते निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

राग—रामकली श्री

चेतन तोहि न नेक संभार, नख सिखलौं दिढ़बंधन बेढ़े कौन करै निरवार, चेतन ॥ १ ॥ जैसैं आग पषान काठ मैं लखिय न परत लगार। मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार चेतन । २ ॥ ज्यौं गजराज पखार आप तन, आप हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरा, तनहिं लपेटत तार चेतन ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो खुलै न पेच अपार। और उपाय न बनै 'बनारसि' सुमरन भजन अधार चेतन ॥४॥

(१३)

राग—सारंग।

दुविधा कब जैहै या मनकी । कब निजनाथ निरंजन सुमिरौं, तज सेवा जन जनकी दुविधा ॥ १ ॥ कब रुचिसौं

पीवै स्वातचातक, बूंद अमयपद घनकी। कब शुभध्यान, धरों समता गहि, करूं न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥ कब घट अंतर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु वचनकी। कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥ कब घर छांड़ होहुं एकाकी लिये लालसा बनकी। ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलिबलि वा छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राग—सारंग।

हम बैठे अपनी मौनसौं, दिन दशके महिमान जगत जन बोलि बिगारैं कौनसौं, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये बिलाय भरम के बादर, परमारथपथपौनसौं। अब अंतरगति भई हमारी, परचे राधारौनसौं, हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रगटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै वौनसौं। छिन न सुहायँ और रस फीके, रुचि साहिब के लौनसौं, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय पाय सुखसंपति को निकसै निज भौनसौं। सहज भाव सदगुरुकी संगति, सुरझै आवागौनसौं, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग—सारंग वृंदावनी।

जगत में सो देवनको देव। जासु चरन परसैं इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव, जगतमें ॥ १ ॥ जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्रीविषय न वेव। जनम न होय जरा नहिं व्यापै, मिटी मरनकी टेव, जगतमें ॥ २ ॥ जाकै नहिं विषाद नहिं विस्मय,

नहिं आठौं मदमेव। राग विरोध मोह नहिं जाके, नहिं निद्रा परसेव जगतमें० ॥ ३ ॥ नहिं तन रोग न भय नहिं चिंता, दोष अठारह भेव। मिटे सहज जाके ता प्रभुकी, करत बनारसि' सेव जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

राग—सारंग वृन्दावनी।

विराजै "रामायण" घटमाहिं। मरमी होय मरम सो जानै मूरख मानै नाहिं, विराजै रामायण ॥ १ ॥ आतम "राम" ज्ञान गुन 'लछमन सीता' सुमति समेत। शुभपयोग "वानरदल" मंडित वर विवेक 'रणखेत" विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान 'धनुष टंकार' शोर सुनि, गई विषयदिति भाग। भई भस्म मिथ्यामत 'लंका' उठी धारणा 'आग' विराजै ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान भाव 'राक्षसकुल' लरे निकांछित "सूर'। जूझे रागद्वेष सेनापति संसै 'गढ़' चकचूर, विराजै ॥ ४ ॥ बिलखत 'कुंभकरण' भवविभ्रम, पुलकित मन 'दरयाव'। थकित उदार वीर 'महिरावण' 'सेतुबंध समभाव, विराजै ॥ ५ ॥ मूर्छित मंदोदरी' दुराशा सजग चरन 'हनुमान'। घटी चतुर्गति परणति 'सेना' छुटे छपकगुण 'बाण' विराजै० ॥ ६ ॥ निरखि सकति गुन 'चक्रसुदर्शन' उदय 'विभीषण' दीन। फिरै 'कबंध' मही 'रावणकी प्राणभाव शिरहीन, विराजै ॥ ७ ॥ इह विधि सकल साधुघट अंतर, होय सहज 'संग्राम'। यह विवहारदृष्टि 'रामायण,' केवल निश्चय 'राम विराजै ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप दोहा ।

जो दातार दयाल ह्वै, देय दीनको भीख ।
त्यों गुरु कोमल भावसौं, कहै मूढको सीख ॥ १ ॥
सुगुरु उचारै मूढसौं, चेत चेत चित चेत ।
समुझ समुझ गुरुको शबद, यह तेरो हित हेत ॥ २ ॥
शुक सारी समुझैं शबद, समुझि न भूलहिं रंच ।
तू मूरति नारायणी, वे तो खग तिरजंच ॥ ३ ॥
होय जौहरी जगतमें, घटकी आखैं खोलि ।
तुला सँवार विवेककी, शब्द जवाहिर तोलि ॥ ४ ॥
शब्द जवाहिर शब्द गुरु, शब्द ब्रह्मको खोज ।
सब गुण गर्भित शब्दमें, समुझ शब्दकी चोज ॥ ५ ॥
समुझ सकै तो समुझ अब, है दुर्लभ नर देह ।
फिर यह संगति कब मिलै, तू चातक हौं मेह ॥ ६ ॥

(१८)

राग–गौरी ।

भौंदू भाई ! समुझ शबद यह मेरा, जो तू देखै इन आँखि-नसौं तामें कछू न तेरा भौंदू० ॥ १ ॥ ए आँखें भ्रमहीसौं उपजीं, भ्रमही के रस पागी । जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इनही को रागी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ ए आँखैं दोउ रची चामकी, चाम हि चाम विलोवै । ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपनरूप तू जोवै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ इन आँखिनकौ कौन भरोसो, ए विनसै

जिन माहीं । है इनको गुनपुद्गलसौं परचै, तू तो पुद्गल माहीं, भौंदू भाई० ॥ ४ ॥ पलकपोल सम इन आंखिनको, बिनु परकाश न सूझै । सो परकाश अगनि रवि शशिको, तू अपनो कर बूझै, भौंदू भाई ॥ ५ ॥ खुले पलक ए कछुइक देखहिं, मुंदे पलक नहिं सोऊ । कबहुं जाहिं होहिं फिर कबहूं, भ्रामक आंखैं दोऊ, भौंदू भाई ॥ ६ ॥ जंगमकाय पाय ए प्रगटैं नहिं थावर के साथी । तू तो इन्हें मान अपने दृग, भयो भीमको हाथी भौंदू भाई० ॥७॥ तेरे दृग मुद्रित घट अंतर अन्धरूप तू डोलै । कै तो सहज खुलै वे आंखें कै गुरु संगति खोलै भौंदू भाई ! समुझ शब्द यह मेरा ॥ ८ ॥

(१५)

राग-गौरी ।

भौंदू भाई देखि हिये की आंखें जे करषैं अपनी सुख संपति भ्रमकी संपति नाखैं भौंदू भाई ॥ १ ॥ जे आंखें अमृतरस बरखैं परखैं केवलिवानी । जिन आंखिन विलोकि परमारथ होहिं कृतारथ प्रानी भौंदू भाई ॥ २ ॥ जिन आंखिनहिं दशा केवलिकी कर्मलेप नहिं लागै । जिन आंखिन के प्रगट होत घट अलख निरंजन जागै, भौंदू भाई ॥ ३ ॥ जिन आंखिनसौं निरखि भेद गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै । जिन आंखिनसौं लखि स्वरूप मुनि, ध्यानधारणा धारै, भौंदू भाई ॥ ४ ॥ जिन आंखिनके जागे जगतके लगैं काज सब झूठे । जिनसौं गमन होइ शिवसन्मुख, विषय विकार अपूठे, भौंदू भाई ॥ ५ ॥ जिन आंखिनमें प्रभा परमकी

परसहाय नहिं लेखैं । जे समाधिसौं तकै अखंडित, ढकै न पलक निमेखै, भौंदू भाई० ॥ ६ ॥ जिन आखिनकी ज्योति प्रगटिकैं, इन आखिनमैं भासैं । तब इनहूकी मिटैं विषमता, समता रस पर गासै, भौंदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आखैं पूरनस्वरूप धरि, लोकालोक लखावैं । अब यह वह सब विकलप तजिकै, निरविकलप पदपावैं भौंदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग—काफी ।

तु भ्रम भूल ना रे प्रानी, तू० धर्म विसारि विषयसुख सेवत, वे मति हीन अज्ञानी, तू भ्रम० ॥ १ ॥ तन धन सुत जन जीवन जोबन, डाभ अनी ज्यों पानी, तू भ्रम० ॥ २ ॥ देख दगा परतच्छ 'बनारसि' ना कर होड़ विरानी, तू भ्रम० ॥ ३ ॥

(२१)

राग—काफी ।

चिन्तामन स्वामी साचा साहिब मेरा, शोक हरै तिहु लोकको, उठ लीजतु नाम सवेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा । देखत मूरत भावसौं, मिट जात मिथ्यात अंधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जोनि बसेरा । मोहि अभयपद दीजिये, फिर होय नहीं भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ बिंब विराजत आगरे, थिर थान थयो शुभवेरा । ध्यान धरै विनती करै, 'बनारसि' बंदा तेरा, चिन्तामन० ॥ ४ ॥

इति अध्यातमपदपंक्ति ।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते ।

सहज हिंडोरा हरख हिंडोलना, झूलत चेतनराव ।
जहँ धर्म कर्म संजोग उपजत 'रस' स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥
जहँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरुचि भूमि सुरंग ।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल चरन आड़ अभंग ॥
मरुआ सुगुन परजाय विचरन भौंर विमल विवेक ।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी सुमति पटली एक । सहज ॥ १ ॥
पट कील जहाँ षड्द्रव्य निर्णय अभय अंग अडोल ।
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा शुभ अशुभ कलोल ॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत बीरे देत ।
आनंदकंद सुछंद साहिब सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥
जहँ विपक उपशम चमर ढारत, धर्म ध्यान वजीर ।
आगम अध्यातम अंगरक्षक, शान्तरस बरवीर ॥
गुनथान विधि दश चार विधा, राजविनिधिविस्तार ।
संताप मिट उसास धीरज सुगम विश्रमवगार सहज० ॥ ३ ॥
भावना समिता क्षमा करुणा चारसखि चहुँ ओर ।
निर्जरा दोऊ चतुरदासी करहिं खिजमत जोर ॥
जहँ विनय मिलि सातौं सुहागनि, करत धुनि झनकार ।
गुरुवचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार सहज ॥ ४ ॥
श्रद्दहन साँची मेघमाला दाम गर्जत घोर ।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥

अनुभूति दामनी दमक दीसै, शील शीत समीर ।
तप भेद तपत उछेद परगट, भावरगत चीर, सहज० ॥ ५ ॥
कबहू असख प्रदेश पूरन, करत वस्तु समाल ।
कबहूँ विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अडताल ॥
कबहूँ अवध अदीन अशरन, लखत आपहि आप ।
कबहूँ निरजन नाथ मानत, करत सुमरन जाप, सहज० ॥ ६ ॥
कबहूँ गुनि गुन एक जानत, नियत नय निरधार ।
कबहूँ सुकरता करम किरिया, वहत विधि व्यवहार ॥
कबहूँ अनादि अनत चिंतित, कबहु करहि उपाधि ।
कबहूँ सु आतम गुणसँभारत, कबहु सिद्ध समाधि, सहज० ॥७॥
इहिभाति सहज हिंडोल झूलत, करत आतम काज ।
भवतरनतारन दुखनिवारन, सकल मुनिसिरताज ॥
जो नर विचच्छन सदयलच्छन, करत ज्ञानविलास ।
करजोर भगति विशेष विधिसौं, नमत 'काशीदास' ॥ ८ ॥

इति परमारथहिंडोलना ।

अष्टपदी मल्हार

देखो भाई ! महाविकल ससारी, दुखित अनादि मोहके कारन, राग द्वेष भ्रम भारी, देखो भाई महाविकल संसारी ॥ १ ॥ हिंसारभ करत सुख समुझै, मृषा बोलि चतुराई ! परधन हरत समर्थ कहावैं, परिग्रह बढत बडाई, देखो भाई० ॥ २ ॥ वचन

वरन कछु नाहीं । नामधरते पाडे खाये, कहत 'वनारसि' भाई, साधो० ॥ ४ ॥

राग–जगला ।

वा दिनको कर सोच जिय ! मनमें वा दि० टेक ।

वनज किया व्यापारी तूने, टाड़ा लादा भारीरे । ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारीरे ॥ आखिर बाजी हारी, करले चलनेकी तय्यारी । इक दिन डेरा होयगा वनमें, वादिन० ॥ १ ॥ झूठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी । इकदिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी, नाहक चित्त लगावै धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियो, पानी से पानी ।मूरखसेती मूरख मिलियौ, ज्ञानी से ज्ञानी । यह मिट्टी है तेरे तनमें, वादिन० ॥ ३ ॥ कहत 'वनारसि' सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे । जीवन मरन किया सो नाहीं, सिरपर काला निशाना रे । सूझ पडेगी बुढापेपनमें वादिन० ॥ ४ ॥

राग–

कित गये पंच किसान हमारे । कित० टेक ॥

बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे । कपटी लोगों से साझाकर, हुए आप विचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना गह गह बैठो लिखलिख कागद डारे । बाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कंठ शबद नहिं निकसत, हा हा कर्मसों हारे । 'बानारसि' या नगर न बसिये, चलगये सींचनहारे ॥ ३ ॥

दो नये पद

राग रामकली

म्हारे प्रगटे देव निरञ्जन ।
भटको कहां कहां सर भटकत कहा कहूँ जन रञ्जन ॥ म्हारे ॥१॥
खञ्जन दृग दृग नयनन गाऊं चाऊं चितवत रंजन ।
सजन घट अंतर परमात्मा सकल दुरित भय रंजन ॥
॥ म्हारे ॥२॥
वोही कामदेव होय काम घट वोही सुधारस मञ्जन ।
और उपाय न मिले बनारसी सकल करमक्षय कंजन ॥
॥ म्हारे ॥३॥

राग धनाश्री

साधो लीज्यो सुमति अकेली जाके ममता संग सहेली ॥ साधो०
वे है सात नरक दुख दारी, तेरे तीन रतन सुखकारी ।
ये है आठ मदा मद त्यागी तजे सात व्यसन अनुरागी ॥
॥ साधो० ॥१॥
तजे क्रोध कषाय निदानी, वे है मुक्तिपुरी की रानी ।
ये है मोहस्यों नेह निवारे तजे लोभ जगत सभारे ॥
॥ साधो ॥२॥
वे है दर्शन मिरमल कारी गुरु ज्ञान सदा सुखकारी ।
कहै बनारसी श्री जिन भक्ति यह मति है सुखकारी ॥
॥ साधो ॥३॥

बनारसीविलास के संग्रहकर्त्ता

नगर आगरेमैं अगरवाल आगरो जो,
गर्ग गोत आगरेमैं नागर नवलसा।
सघवी प्रसिद्ध अभैराज राजमान नीके,
पच बाला नलनिमैं भयो है कवलसा ॥

ताके परसिद्ध लघु मोहनदे सघइन,
जाके जिनमारग विराजत धवलसा।
ताहीको सपूत जगजीवन सुदिढ जैन,
बानारसी वैन जाके हिये में सबलसा।

समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयो,
ज्ञानिन की मडलीमैं जिसको विकास है।
तिनन विचार कीना नाटक बनारसी का,
आपुके निहारिवे को आरसी प्रकाश है ॥

और काव्य घनी खरी करी है बनारसी ने,
सो भी क्रमसे एकत्र किये ज्ञान भास है।
ऐसी जानि एक ठौर, कीनी सब भाषा जोर,
ताको नाम धर्यो यो बनारसीविलास है ॥

दोहा

सत्रहसै एकोत्तरै, समय चैत्र सित पाख।
द्वितियामैं पूरन भई, यह बनारसी भाख ॥

इति श्री कविवर बनारसीदासकृत बनारसी विलास समाप्त ।

गुणग्रह (गुणगृह)–गुणों के घर । चिन्तामणि (चिन्तामथि)–एक प्रकार का रत्न जो चिन्तवन करते ही सब कुछ देदे। चिन्मय (चिन्मृष) (चिन्मुख)–चैतन्य मय । चारित्रधाम (चारित्रधार)–चारित्र का स्थान । निर्मम (निर्मन)–ममत्व रहित ।

पृ० ६—अवक (अवक)–सरल । प्रपु ज. (प्रजु ज) (प्रभु ज)–समूह । विमुक्त (विमुत्त)–कर्म रहित । छपाकरोपम (छपाकरोछम)–चन्द्रमाके समान । कृतयज्ञ (कृतजग्य)–जो उपासना कर चुका है। लुप्तमुद्र (लुप्तभद्र)–जिसका शरीर नष्ट होगया है । धीरस्व (धीरस्थ) धीर है आत्मा जिनका । शिलीद्रु म (शीलद्रु म)–शीलवृक्ष । उदोतवान (उद्योतवान)–प्रकाशवाले ।

पृ० ७—दुर्गम्य (दुर्गम)–जो कठिनता से जाने जा सकते हैं । दयार्णव (दयारनव)–दया के समुद्र । महर्षि(महारिषि)–महामुनि । परमेश्वर (परमेसुर) । परमऋषि (परमरसी) (परमरिसी) । परममुद्र (करममुद्र)(सुखकरसमुद्र)–उत्कृष्ट स्थितिवाले । अशेष (अभेष)–पूर्णता स्वरूप । निद्वन्दी(निरदुन्दी)–रागद्वेष रहित । निरवशेष (निर विशेष)–पूर्ण । बुधि नायक (बुधनायक)–बुद्धि के नेता । मोक्षस्वरूपी (मोखस्वरूपी) । महाज्ञानि (महाजानि)–विशाल ज्ञान वाले । कमला समूह(करुणा समह)–लक्ष्मी के पुंज ।

पृ० ८—मारविहडन (मानविहडन) कामका नाश करने वाले । द्रव्यस्वरूप (दरवस्वरूप) नित्य । पद्म (पदुम) उप्पम–कमल के समान । महायशवंत (महाजशवत)–अत्यंत यशस्वी । सकट

पृ० १५—महास्वामि (महस्वामि)। महदर्थ (महद्घ)। गुणागार (गुणाकार)। महारसग (महारस रंग)। कलिग्राम (कलग्राम)। वेल (मोह)। त्रिगुणी (विगुण)। त्रिकालदर्शी सदा (त्रिकालदरशी दशा) मनमथमथन (मनमथदहन —काम को मथन करनेवाले।

पृ० १६—ब्रह्मांड (ब्रहमंड)—सम्पूर्ण विश्व। मोपर (मोपैं,—मुझपर।

सूक्तिमुक्तावली

पृ० १७—कांतार (कन्तार)—वन। हुतासन—आग।

पृ० १८—परिमल—सुगन्ध। रसाल—रसिक।

पृ० १९—हींडत—(हुंडत) घूमते हुए। वादि—व्यर्थ। वाहित (वाहित) (वोहित)—बड़ी नौका। त्यों यह दुर्लभ देह बनारसि (त्यों नरदेह दुलंभ बनारसि)।

पृ० २१—पूजहु (पुज्जहि)—पूजो। गुरु नमहु (गुरु नमहि)। बखानहु (बखानहि)। चहहु (चहहि)—चाहते हो। आने—प्राप्त करवाती है। नित देह (नरदेह)।

पृ० २२—खंड पति—अपनी स्त्री से विरक्ति रखने वाला पति। सो सब (ते सब)।

पृ० २३—सुरनि नैन—देवांगनाओं की आखों से। करहि (करत)—करते हैं।

पृ०३३–कुरग–हरिण। व्याल–साप। पियूष–अमृत। अहिफन–साप का फण। सत्यवादी के दरस तैं; (सत्यवादी दरशन तैं)।

पृ० ३४—विसरैं (विस्तरैं)–फैले।

पृ० ३५—गोपहि (गोपैं)–छिपाना। विलोपहि, (विलोपै) नाश करना। लोरहि–लिपटना। उपाध–झगडे।

पृ० ३६—मलान–मैला। दलमलहिं (दलमलै) बोरैं–डुबोवें।

पृ० ३७—भालै—भलि भांति देखना। खडमित–टुकडे जितना। किलसै—क्लेश को प्राप्त करवाना। तनथूल–मोटा शरीर।

पृ० ३८—समतूल–समान। गयन्द–गजेन्द्र। अघायवेको–संतुष्ट करनेको। नीतनयनीरज–नीति और न्याय रूपी कमल।

पृ० ३९—बालहित–बचपन का मित्र। विलासवन–क्रीडाक्षेत्र। दुरित–पाप। कलहनिकेत–कलह का घर। गवेषी–खोजनेवाला। याही–याकी।

पृ० ४०—मनहु—मानों। असित–काला। दवदान–अग्नि के देने के समान। तिहि (तह)–उसको।

पृ० ४१—यश–(जश)। दुरबैन–खोटे वचन। समुच्चरन (समुधरन)–बोलना। आवरहि–ढकता है। नाग–हाथी। विहंडहि–तोडता है। धूपमहँ (धूपगह)–गर्मी में। गोप–ढकना।

पृ० ४२—सरिता–नदी। गुणग्राम–गुणों का समूह। बधबुद्धि–हिंसा का भाव। पटतर–समान। सर्वज्ञ किशोर–सम्यग्दृष्टि। वेद–शास्त्र।

(सूजि)-सूजकर । जपहि-कहता है । सलहन-श्लाघा, प्रशंसा विहडहि-छोड़ता है । मडहि-मांडता है ।

पृ० ५०—उमाहै-उत्साह करते हैं । सुधी बिन (सुधी बिनु) अच्छी बुद्धि के बिना ।

पृ० ५१—तोष-संतोष । बारहि-नष्ट करता है ।

पृ० ५२—दुरद—हाथी । मूलजग-मूलस्थान । सुमग-अच्छा मार्ग । उरग-सांप । मुद्रा करैं-बंद करते हैं । करन सुभट-इन्द्रिय रूपी योद्धा ।

पृ० ५३—विभोको-विभव का । बूठे हैं-बोलते हैं । काठी-कष्ट

पृ० ५४—करोरी-तहसीलदार, करोड़पति, रोकड़िया । धोरी-अगुआ । अघोरी-घृणित-भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करने वाला ।

पृ० ५५—घूम-घूमना । तिसना दव-तृष्णा की आग । धूम की झाई-धुवां की मलिनता पोषित (पोषति) पोषण करती है । ताई-समान । साई-स्वामी-पति । नरवै-राजा । जोवै-देखे । निशाचर-चोर । दृगओट-छिपकर । ढोवै-लेजाते हैं । जक्ष-यक्ष दामधनी-पैसे का मालिक ।

पृ० ५६—कमला-लक्ष्मी । कंज-कमल । चरन-चारित्र ।

पृ० ५७—अनघ-पापरहित । सोपान-सीढ़ी । सुपत्तहिं-सुपात्र । दलमलहि-नष्ट करता है । गजहि-दुःख देता है । निरादर करता है ।

पृ० ५८—रमा-लक्ष्मी । चरचै (अरचै)-स्पर्श करता है । मिताई-मित्रता । परचै-परिचय ।

पृ०६६—सो–इसी तरह। उपसर्पन–पूजा। सुपत्तहि–सुपात्रोंको परमानहिं (परमागम)–शास्त्र। प्रभु जै–अनुभव करता है।

पृ० ६७—सुपात्रहिं (सुपत्तह)–अच्छे पात्रों को। कुशल–पुण्य

पृ० ६८—कटक–कड़ा। कर–हाथ। करन–इद्रिय। वहोरकै इकट्ठाकर, लौटाकर।

पृ० ६६—सीरो–शीतल। जोय–देग। अन्तर विपच्छ–भीतरी शत्रु काम क्रोधादि। विलच्छ–लज्जित। अच्छकदव–इन्द्रियों का समूह। वम्ब–रणभेरी।

पृ० ७०—पद (पट्ट)। वादीमदभजन (वादिमदभजन)– वादियों के अभिमान को दूर करने वाला। विजयसेन (विजयसिंह) ह्वै सुपुरुप (होहिं सुरुख) (होंहि सुखी)।

ज्ञान वावनी—

पृ० ७२—शब्द (शवद)–ध्वनि। विशद (विहद)–निर्मल। शुद्धता स्वभाव लये–शुद्धस्वरूप की अपेक्षा। राय–राजा। चिदानद– आत्मा। विभाव–विकार। लै (ये)–लेकर। त्रिगुण–तीनरूप। नरलोक–दुनिया में। अनक्षर अग्र–अनक्षरात्मक। पिण्ड–शरीर। सैन में बतायो है–अनक्षरात्मक श्रुत का उदाहरण सकेत है। बावन वरण–अक्षरात्मकश्रुत ज्ञान ५२ अक्षरों द्वारा प्रकट होता है। सनिपात–सयोग अर्थात् ५२ वर्णों के सयोग से वनने वाले असख्यात सयोगी अक्षर होते हैं। तिन में (तामें)–उनमें। कामत्र गायत्री–णमो अरिहताण आदि अपराजित मत्र।

मन चाहा फल देती है" आई (वाइ), । पचन के परपच-पाचं इन्द्रियों के उत्पात । वल भेदकी-वल को भेदन करने वाली । सहज स्वभाव मोह सेना बल भेद की (सहज सुहाय मोह सेन भई मदकी

पृ० ७७-उमग-उत्साह । अनन्द-आनन्द । बढै (छूटे)-आं बढ जाने पर। बंधी कलबाजो पशुचाम ढोल मंढिये (पर विकास भयो भवदधि कढिये)-वे अपनी कलाबाजी को बाधते और वे पशुके चमडे से मढे हुए ढोल की तरह हैं । छते-होने से दीखे (सेती)-दीखने से ।

पृ० ७८—कहर-आफत । पिण्ड-एक । विरमड-सम्पू जगत । आन रे-हे भाई आओ । मिलत लोक-लोक इक हो जाते हैं । एकतान-एकाग्र । सेरह्या-सो रहा है । च्वैरह्यो चूरहा है ।

पृ० ७९—अगम ज्योति-आत्मज्योति । डोहै-अवगाहन करै डोह्यो-अवगाहन किया । न उधरि है-उद्धार नहीं होता है भवतरि है (गुण भरि है) । तलक-तक । वनारसीदास-(बना रसी माता) । खलक-दुनिया । तुवक-छोटी तोप । सुबक-हलका सुन्दर-कोमल । कलचम्पी-यन्त्र को दबाना । जानकी अर्थात जामगी,बन्दूक या तोप का पलीता । रजक-तोप या बन्दूक प्याली में रखो जाने वाली तेज और थोडी सी बारूद ।

पृ० ८०—कुमक-सहायता । पक्षपात-तरफदारी । न्यानकी ज्ञानकी । उरधवाट-उन्मार्ग, खोटामार्ग । जो पै-जिसप

पृ० ८३—परावर्त्त पूरणी—केवल पच परावर्त्तन को पूरण करने वाला। मृगमद—कस्तूरी। नाभि—हिरण की नाभि। उपखानो—कहावत। तेरे एक ही (जिन देवके)। भूल्यो (ढूल्यो)—घूमता रहा। निगोद—साधारण वनस्पति एकेन्द्रिय जीव। ढाकि आयो—उछल आया। अजहूँ तू—(अजहूँन)। सीतवदा सीता—ये नदियों के नाम हैं।

पृ० ८४—भै—डर। कालकूट—जहर। कहरी—आपत्ति का कारण। समाधि (सुभाइ)—ध्यान। चहरी—चहल पहल। उदधि उधान—समुद्र का उठाव। उपल—पाषाण।

पृ० ८५—थलका (थल को)—जमीन पर का। विमल (निर्मल) इधिना—अवधि। अखड (विमल)—खण्ड रहित। मीढि देखी—सोचकर देखने से। मिथ्याती (अथिर)। नरको वचन (वचन रचन)। शुद्धारथ (सिद्धारथ)। पटतरो—(आनतरो)—समान। कुक—क्षत्रिय, एक बड़ा ग्राम। द्यौस—दिन।

पृ० ८६—बानारसी ससार निवास (वदतबानारसी ससार)। पामर वरण—हीनवर्ण। अगाज—अवक्तव्य। ताहि (देखै)—उसे। घुघची रकत—लाल चिरमी। रीरी—पीतल। पीरी—पीतल। बान—वर्ण—बानी। मुद्रा को मडान—बाह्य भेष का धारण करना।

पृ० ८७—धुन्ध धावहि—अज्ञान की ओर दौड़ता है। छतो—मौजूद। आहि—है। विवसाव—उद्यम। खीर—दूध। ताव—गर्मी। गुरुज्ञान (गुणज्ञान)। तूही (तू भी)। कहै (मानै)। सुखरथ—सुखदायक सवारी। रंगभूमि—नाट्यशाला।

पृ ८ —पोत-जहाज। तारिवेको (तरिवको) भवसागर-शास्त्रको संगार। से रहरसी-(को कारसी) रहंगा। विजया-मांग। कंद वृन्द-कदों का समूह। कर्मुमो-कामरग। सिच्यासोपी-मिथ्या मत। शीरनी-मिठाई। पंच गोलक-स्कन्ध अण्डर आवास पुलवि और शरीर ये उत्तरोत्तर असख्यातलोक असंख्यात लोक गुणित है। इनसे निगोदिया जीवों के शरीरों का परिमाण जाना जाता है। अम्बार-इकट्ठा ढेर।

पृ ९—भोम-भस्म। बडे वृन्द-बडे लोग। तबक दुनिया।

पृ ६ —कौरपाल-कवि के साथी जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। पातम्बर-एक सज्जन साधर्मी भाई। विवैदरी-आसोज सुदी १०। नक्षत्र-नक्षत्र।

बेद निर्णय पञ्चासिका।

पृ ६१—अन्तर जीव में। गुम-नष्ट होगये गुम। मुवा है-मरगया है। रचा-रगा। मशान-मरघट।

पृ ६२—थिति-स्थिति। जबा-पचाव। मथा मथन किया है। नभ-आकाश। ध्रुव (धुव)-निश्चल।

पृ ६३—जुगम-दो। धरिआ-धारण किया है। धरणी-पृथिवी। करण त्रिया अधकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। श्रेणी धारा-क्षपक श्रेणी और उपशम श्रेणी। दोपमुखी-निरन्तर पाकी। मोक्ष मुखी-दुःख बढ़ने वाली है। पनविधि (पंचविधि)-पांच प्रकार का।

पृ० ९४—निर्वेद-वैराग्य।

पृ० ९५—सोम-चन्द्रमा। सुरसे-प्रेम सहित। सीरे-ठंडे। अति-सब। रागद्वेष-(राग वैर)। पोरि-दरवाजा। परद्वार न (परदा न)-परदा नहीं है। कपाटिका-किवाड। बदनपीत-पीला मुह।

पृ० ९६—मुख जलप-मुह से बोलना। अहमेवता-अहंकार। धरित्रीपति-राजा। वेवता-जानता। मरोरा-परिवर्तन।

पृ० ९७—हरि हरि भाति-अहमिन्द्रों की तरह। नावजु (नाउ न)।

पृ० ९८—जग (जिन)।

पृ० ९९—मृषामग-झूठा मार्ग। कहात-कहावत।

त्रेशठ शलाका पुरुषों की नामावली।

पृ० १०१—त्रिपृष्टि (त्रिविष्टि)। जिन (जित)।

पृ० १०२—नेमि नर (नेमि जिन)। जोरकर (रैन दिन)।

पृ० १०३—त्रिपिष (त्रिविष्ठि)।

मार्गणा विधान।

पृ० १०४—विभगा अवधि-झूठा अवधिज्ञान।

पृ० १०५—इनरूप रसग-इन रूप होकर। नटै-नाटक करता है। कारीसादाह-छाणे की आग की ज्वाला। वनदवदाह-वनाग्नि की ज्वाला।

कर्म प्रकृति विधान।

पृ० १०८—सुरति-होश।

पृ० १०९—समतूल-बराबर। दुगन्छा-घृणा। पजावा-कुम्हार का हाव।

पृ० ६४—निर्वेद-वैराग्य ।

पृ० ६५—सोम-चन्द्रमा । सुरसे-प्रेम सहित । सीरे-ठडे। अति-सब । रागद्वेष-(राग वैर)। पोरि-दरवाजा । परद्वार न (परदा न)-परदा नहीं है। कपाटिका-किवाड । वदनपीत-पीला मुह ।

पृ० ६६—मुख जलप-मुह से बोलना। अहमेवता-अहकार। धरित्रीपति-राजा। वेवता-जानता। मरोरा-परिवर्तन ।

पृ० ६७—हरि हरि भाति-अहमिन्द्रों की तरह । नावज्ञ (नाउ न)।

पृ० ६८—जग (जिन)।

पृ० ६६—मृषामग-झूठा मार्ग। कहात-कहावत ।

त्रेशठ शलाका पुरुषों की नामावली ।

पृ० १०१—त्रिपृष्टि (त्रिविष्टि)। जिन (जित)।

पृ० १०२—नेमि नर (नेमि जिन)। जोरकर (रैन दिन)।

पृ० १०३—त्रिपिष (त्रिविष्टि)।

मार्गणा विधान ।

पृ० १०४—विभगा अवधि-झूठा अवधिज्ञान ।

पृ० १०५—इनरूप रसग-इन रूप होकर। नटै-नाटक करता है। कारीसादाह-छाणे की आग की ज्वाला । वनदवदाह-वनाग्नि की ज्वाला ।

कर्म प्रकृति विधान ।

पृ० १०८—सुरति-होश।

पृ० १०६—समतूल-बराबर। दुर्गन्छा-घृणा। पजावा-कुम्हार का हाथ ।

मैल। बिसरौ-बिसक। गिरहा-गर्व। पेच-मरोड़। कलमस्सा-विकल। भ्रमस्सा-गड़बड़, असष्ट। किरहाती-बिजली। भूमिनी-दरप रूपी भूमिको। कुरस्सा-कुराको। तिरहाता-ठनक। बदल-पहाड़। दुरस्सा-दुविधा सहित। किरहा-किरहोंने। करमहा-कर्म का। दुविधा-दो प्रकार का। भला-अच्छा लगता है। ख्याक मस्सा-अच्छा दिखने वाला। बाहस्सा-व्यर्थ। बंक कटाखे कोयला-बांके और कटाक्ष सहित आंखों से। मस्सा-मान्य। कोदो पाला चेतों को रखने के बराबर है।

१ ११३—पाहन-पत्थर। पहस्सा-पहल पहल, भीतर में पहुँचना कीचड़। बहस्सा-बह जाता है। अप्पा-अपने को। ठग्गा-ठग लिया है। गिरि-पहाड़। पथा-पहरापथ। किम्हि-किसने दिखा-दिया। टस्सा-चस्का। दस्सा-वासतुक संबंध। गरब गहस्सा-अभिमान से पागल। लम-बोझ उठाने वाला। बस्सा-बस्ती का छप्पर के नीचे बगई जाती है। भल्ला-भला किया। सुपनेहा-सुपने का। बिकस्सा-विकास। भंवर-भंवरा। मस्सा-मलीन। गस्सा-ग्रास हांकना। ग्रमसोच-निराम। सस्सा-माया मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य। बिलहा-बीतचे। परमब्रस्सा-परमब्रह्म दिया। रुधिरादी पुरुसो-खून के संपर्क से। रुधिरानल-खून का माता। होंदी-होगी। करहा-करोगे। बस्सा-गस्स-गारस। करंहा-करता हुआ।

१ ११४—मिहमकरा-एक प्रकार की मक्खी। हांका मसस्सा-टोका मारदिया। टस्सम ठस्सा-ठसा होकर अथवा ठाठी बात है।

साधु वंदना

पृ० १२६—सुमरि आन-स्मरण में लाकर। अवशिक (आवसिक) (आवश्यक)-अवश्य करने योग्य। तिथि असन-खडे २ भोजन करना। लघु असन-हलका भोजन करना। मोच-छोडना। सतत-सदा। मृषा-झूठ। रती-रत्ती भर भी। घटित-घडा हुआ। अघट-नहीं घडा हुआ। फरसै-स्पर्श करे। मदन-काम। प्रासुक-जीव रहित। तपीश (तपसी) तपस्वियों के ईश।

पृ० १३०—निरवद्य-पाप रहित। सचार (साचार) (आचार) जाकर। सुरति-सावधानता। अचेत-जीव रहित। पूरव-कारण। आदान-लेना। नवदुवार- दो आख, दो कान, दो नाक के छिद्र एक मु ह, गुदा और लिंगेन्द्रिय ये मल बहने के नो द्वार हैं। निहार-टट्टी, पेशाब आदि। हरुव-हलका। सभार-भारी। तपत-गर्म। तुसार-ठंडा। भीत-दिवाल। सुणै (गिणै)।

पृ० १३१—ठानै-करे। प्राछित्त-प्रायश्चित्त। सज्झाउ-स्वाध्याय। निद्राल-निद्रा लेने वाले। वचै-हरण करता है। मोष-मोक्ष। थिति-खडे होकर। मल पात-मल का गिरना।

मोक्ष पैडी

पृ० १३२—इक्क-एक। रुचिवंतनो-श्रद्धानवाला शिष्य। अक्खै-कहता है। मल्ल-बहादुर। तुसाडी-तुम्हारी। अल्ल-पहिचान। छयल्ला-छैला। रोचकशिक्खनो-रुचिवाला-शिष्य। मयल्ला-मैला। इसदा-इसका। द्विपद-दो पैर वाला। बयल्ला-

पृ ११०—अभिमान–मान। चरम दृष्टि–अंतिम दृष्टि अर्थात् ज्ञान। अंगम–चलने वाला। सीरो–ठंडा। हलका (हल्का)।

पृ ११८—दुरै–दूर होती है। अक्षर–अक्षय। रौस–रविश।

पृ ११९—माल–सिर। मकर कूदसी–मकड़ी के कूदने की तरह। मकर चाँदनी–मकर राशि की चाँदनी। पूछै–कूपता है। मेंढ–मेंढक।

ध्यान बत्तीसी

पृ १४०—निरुपाधि रागद्वेष रहित। परम समाधि–शुद्धात्मा का ध्यान।

पृ १४१—अचल–अडोल। जोवे–देखे। विशेषक–विशेष करके।

पृ १४२—अमघोष–निशान। हिये–हृदय में। तरंगिनी–नदी अपने–हे समवसार।

पृ १४३—छीजा–नष्ट हुआ। वेरा–समय। निवेरा–न्यारा। विपरीत (विपरति)–व्युपरति–क्रिया–निवृत्ति नाम का चौथा शुक्ल ध्यान।

अध्यात्म बत्तीसी

पृ १४४—कर्षै–खींचता है। पाय–दौड़ कर। पावक–आग। बर्तें (बातें) भावकर्म–रागद्वेष। द्रव्य–ज्ञानावरणादि कर्मों का रूप। नो कर्म–शरीरादि। घन–शरीर। अक्षमन–अक्षय। आपी मूसा, मूष।

गल्ला–अनाज वगैरह । मोगर मल्ला–थोथा मोटा । वैसधा–बालक। बल्ला–बड़ा । कल्ला–काला । नवल्ला–नया । फल्ला–फलवाला जल्ला–जलने वाला । दुधा–दो प्रकार का । तुलदा–ताकड़ी । पल्ला- पालड़ा । हरु वैतन–हलका । गुरु॰ वैतसौ–भारी । थल्ला–स्थान । दुहु दिशिनो–दोनों ओर । चल्ला–चलायमान । जटल्ला–जटा । परेरै–प्रेरणा पाये हुए । गल्ला–गलना ।

पृ० १३५—चहुधा–पानी, आग, पवन और पृथ्वी में । रल्ला–मिला हुआ है । मद मतवल्ला–मदोन्मत्त । दुहुँवादी– दोनों से । समल्ला–मल सहित । खलफल्ला–आकुलता । हल भल्ला–समान भाव अथवा आकुलता दायक समझना । विथार– विस्तार । बुल्ला–बुदबुदा । खल्ला (थल्ला), थल । अरहटहार– अरहट के घड़ों की माला । भल्ला–अच्छा । वतनु–घर । तुसाडा– तुम्हारा । रोह रुहल्ला–धक्का देना । दुरल्ला–दुर्लभ । चरल्ला– चहल पहल । महल्ला–सरल ।

पृ० १३६—प्रबल्ला–जबर्दस्त । विहंडिया–नाश कर दिया । दुहल्ला–तीव्रदुख । आगि अंगारे-अग्नि के अंगारे में । तूल पहल्ला– रुई का ढेर । सतगुरुदी–सतगुरु की । देशना–उपदेश । आस्रवदी– आस्रव की । वाढि–रोकना । लद्धी-प्राप्त करली । मोखदी-मोक्षको ।

कर्म छत्तीसी

पृ० १३६—परमसमाधिगत–परम ध्यान को प्राप्त । अगम– जहा जा नहीं सकते । अलोकनभ–अलोकाकाश ।

पृ १२१—पोहै-पोषण करते हैं। बिभूति-राख। पंच बदन-पाँच मुख। अंधक हरण-अंधक का नाश करने वाले। त्रिपुर हरण-त्रिपुर नाम के राक्षस का नाश करने वाले। काम दहन-काम को जलाने वाले। कपूर गौर-कपूर के समान गौर वर्ण। किह ठाव-किस स्थान में।

मन सिन्धु चतुर्दशी

पृ १२२—सम्यकवत को (समकितवंत)। माझीमतहां (माझमतहां) (माझिम तहां)। बुनि-शब्द।

पृ १२३—बाहवाल-पाल। चढे (गढे)। गोहै (कटै) (घटै)।

अध्यातम फाग

पृ० १२३ चपट-जो मिल नहीं सकता।

पृ १२४—विषम-रागादेवात्मक। मयमंत-मदवाला। बारहवा। कुबर-कोटरा। निवरासि-दिन का चांद। सुरति-अनुभव। हिमगिर-हिमालय। वितथ-झूठ।

पृ १२५—चाचरि-नौकरानी। धमाल-ब्रजबाली, होली का गीत। सीयरो-ठंडा। निरनीति निश्चय। सुरत-अनुभव। तताई-तातापन। मसमद्रेख-मूछ की रेखा।

सोलह तिथि

पृ १२६—रसपागी-अनुभव से भरी हुई। दुहूँघी (दहूँघा) दोनों प्रकार की। त्रिधा-तीन प्रकार। चारै-चार।

पृ १२७—सिद्धि (रिद्धि)-अणिमा, महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ऐशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं।

पृ० १४५—ढरनि-उतार चढाव, घूम ।

पृ० १४६—वाट-मार्ग । उद्घाट-खुलना ।

ज्ञान पच्चीसी

पृ० १४७—पवन (पौन) हवा ।

पृ० १४८—दाव-जंगल । उपाव कै-उपाय करके । गहि आने-पकड़ता है । साधि-वश में कर के । फेट सम्मिश्रण । वान-बानी वर्ण । पर्व-पूर्णिमा । अथवा अमावस्या । सूर-सूरज । सोम-चद्रमा ।

पृ० १४९—समोय-मोहित करके । अभ्यासते (परगासतें) । बुझावत (छुडावत)

शिव पच्चीसी

पृ० १५०—जह (जह) जहा । गह (गच) ग्रहण करने से । कुण्डली-सुषुमना नाडी के मूलाधार के निकट की एक कल्पित वस्तु । जलहरी-शिव मूर्त्ति के ऊपर टागने का मिट्टी का सछिद्र जल घट । उपाधि-परिग्रह, वाह्यवस्तु, धर्म चिन्तना । अव्यापि-सब जगह नहीं रहने वाले । निर्गुण रूप-सत्व रजतम से परे । सगुण स्वरूप-सत्वादि गुण सहित । अगम-ज्ञान का अविषय अथवा पहुँच के परे । पागै-सना हुआ । सिंगी-सींग का बाजा । वाघम्बर-वाघ का चमडा । सरवंगी-सर्वांग ।

पृ १९७—निर्दंद्ध-कलंक रहित। सुदेश-मकान रहने वाली। मिरसा निदानी-निदान (भोगों की वांछा) नष्ट करने वाली।

नवदुर्गा विधान

पृ १९८—गिरिशृंग-पहाड़ का शिखर। रासभ-गधा।

पृ १९९—महिषासुर-एक राक्षस। अपरजी अविनाशित।

पृ १० —अनुकंपा-दया। रावे-भगवान की याचना करती है।

नाम निर्णय विधान

पृ २०१—अलख-जिसे देख नहीं सकते। अलीक-झूठा।

पृ २०२—दम-पाखंड। त्रिभुवन-बालक यौवन, और वृद्धावस्था। तुव-तुम्हारे।

पृ २०३-बरुनी-आँखों के आगे के बाल। गोलक-आँख का गोला। गंड-गालों के ऊपर का हिस्सा। श्रौन-कान। अधर-नीचे का ओठ। दशन-दांत। घटिका-गुद्दी, गले की हड्डी। चिबुक-ठोड़ी।

नवरस कवित्त

पृ २ ३—मित्त-मित्र। जियहु-जीजिए।

पृ २०४—जियबत-जीजिए। आमिय-आइये। कपुपल-कोलाहल। असन आसकी-भोजन का लोलुपी। गद-रोग। तकि-ताक कर। सुकि-सूझने वाला। मरे-नहीं नष्ट होने वाली। मसकरी (मसखरी)।

पृ २०५—चर-गुप्तचर। निडोरे-नष्ट करे। निहाल कर्म-पुजारी। मिले-नष्ट करी। कर्मे (कर्म)।

तावै–तपावै। काठिया–राहगीरों को लूटने वाले।

तेरह काठिया

पृ० १५७—बटपारें–लूटै। वाट–रास्ता।

पृ० १५८—कोह–क्रोध। विवसाव–उद्यम। आपन (आपा)–खुदको। बटपार–लुटेरा।

पृ० १५६—दुरमति–खोटी बुद्धि।

अध्यातम गीत

पृ० १६० जब–जो। उनहार–सूरत, समानता। पटतर-समान। भोर–प्रात काल। गजगंजन–हाथी को डराने वाला।

पंच पद विधान

पृ० १६२—पचकरन–पाचइन्द्रिय। उभाभय (उवभाय) उपाध्याय।

पृ० १६३—जस–जिसे। गौन–गौण अमुख्य।

सुमति के देव्यष्टोत्तरशतनाम

पृ० १६४—शोभावती (सोभागवती)।

शारदाष्टक

पृ० १६५—दुर्नैहरा–खोटी नीति को हरण करने वाली।

पृ० १६६ – सुधाताप (सुधाताप)। असैवृक्षशाखा–आत्मवृक्ष की वाली। समाधान रूप–समस्याओं का हल करने वाली।

पृ० १७६—लवन-लावण्य। घन-अत्यत।

अष्टप्रकार जिन पूजन

पृ० १७६—पुष्पशर-पुष्प रूपी तीर।

दशदान विधान

पृ० १७७—भायित रूप-भावमय। बछरा-गायका बछड़ा।

पृ० १७८—पयाना-प्रयाण।

दशबोल

पृ० १७६ छट्ठे दोहे के पहले "जिन धर्म" शीर्षक के नीचे यह दोहा और है। छटा दोहा "आगम" शीर्षक में समझना चाहिए।

जिन धर्म

जो पर तजि आपा भजै, जहा सुदिष्टि जुत कर्म।
अशरण रूप अजोग पथ, सो कहिए जिनधर्म॥

पहेली

पृ० १८०—कत-पति। अबाची-अवक्तव्य। साल-दुख।

पृ० १८१—बिरषा-वृक्ष। लहलहो-लहलहा रहा है। झकुलाई-हिलता है। उद्धत (अद्भुत)। हौं-मैं। चेरी-दासी।

प्रश्नोत्तर दोहा

पृ० १८२—खोजत (सोधत) दुरिकै-दूररहकर। दुराव-छिपाव। पाहन-पाषाण।

पृ० १६१—हीर—हीरा।

नवसेना विधान

पृ० १६१—पत्ति-पयादा। कटक-छावनी।

पृ० १६२—चमूदल-फौज। पायक-पयादे।

कलशों का भाषानुवाद

पृ० १६४—पचम गति-मोक्ष।

फुटकर कविता

पृ० १६७—परधीन (परधान)। डोवनारसी-डुबोने वाला।

पृ० १६८—दारी-व्यभिचारणी स्त्री। अशरमी-निर्लज्ज। फैल करें-पाखड करते हैं। वाय-हवा।

पृ० १६६—हमाल-हमाली करने वाला। नवनिज्ज-मक्खन।

पृ० २००—वमही है-रहती है।

पृ० २०१—शीसगर-शस्त्र बनाने वाला। काछी-जाति विशेष। कुदीगर-कपडे पर कुदी करने वाले। वारी-पत्तल बनाने वाला। राज-कारीगर, मकान बनाने वाला। सिकलीगर-औजार के धार करने वाला। सत्तुट्टहि-सहसठ। खिपानहु-क्षय करना। पैढी-प्रकृति।

गोरख नाथ के वचन

पृ० २०२—भग-योनि।

पृ० २०३—कोमल पिण्ड-बच्चा। कठिन पिण्ड-जवान। जूना पिण्ड-पुराना शरीर।

वैद्य आदि के भेद

पृ० २०३—स क्रमण-राशिका बदलना।

पृ० २०४—मुसल्ला-नमाज पढने की दरी।

पृ० २०५—जेर (जोर) (चोर)—जो।

पृ १ १—कुप्य-चाँदी और सोने के अतिरिक्त सब कुछ। युसित-स्त्री। सरीस-समान। छेरी-बकरी।

निमित्त उपादान के दोहे

पृ १२१—उपादान जो स्वयं कार्य रूप परिणत हो उसे उपादान कारण कहते हैं, जैसे घड़े का उपादान मिट्टी है।

निमित्त—जो स्वयं कार्य रूप परिणत न हो किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं जैसे घड़े की उत्पत्ति में दण्ड, कुम्हार चाक आदि।

पृ १२३—पट पेलस-एक प्रकार का खेल। नाहीं वेला (जैसे ढेला)।

पृ १२२—बसन-कपड़ा। पानी-हाथ। सुरेल का पकवान-जिससे भूख जाने पर भी भूख न मिटे। लैटकी-शिखरी।

पृ १११—पिंड-शरीर।

पृ १२७—रज-मिट्टी। न्यारिया-मिट्टी में से चाँदी सोने को शोधने वाला। भीजै-कवहीन होता है। ममकीजै-मन लगा देता है। धु गी-भँवरा।

पृ १२ —पाइ-पैर। चाखम-प्यारे। दुदु दान-तेरा। गागरि-घड़ा। म धरा-म चढ़ा। गौ-गया। फहराय-फहकर। पेसिव-प्रवेश किया। पेखि-पेखकरके। आगरिया-गली।

पृ २११—पियरा-पियारा। गरब-अभिमाना। सचीकम-चिकना। जागहि-जागेगी। अनि-मत अघोर-घोर। तोर-तेरा। मूसहि-चोरते हैं। सरवस-सबकुछ। कोल किरात-भील वगैरह। अहेर-शिकार। वनसावर-वन में रहने वाला। सबीत-मित्रिम्त। कटकीस-नाटक का पात्र। छोपि-छिपाकर।

पृ० २३०—करवत-करोत। पास-नजदीक । पाचठग-पाच इन्द्रिया। धौरहर-मकान। वेर-देर। निकेतन-मकान। कतहु-कहीं भी। वाट-मार्ग।

पृ० २३१—विरचि-उपेक्षा करके। सभार-सभाल। निवार-हटाना। लगार-जरा भी। छार-राख, मिट्टी। पखार-धोकर। पाट को कीरा-रेशम का कीडा।

पृ० २३२—वलि वलि-वलिहारी। राधारौंन-राधा के रमण अर्थात् परमात्मा। वौनसौं-वमन से। लौन-सौंदर्य। भौन सौं-मकान से। आवागौन-आना जाना। वेव-अनुभव करना

पृ० २३३—भेव-भेद। दिति-दैत्यों की माता। निकाछित-इच्छा का भाव। वलखत-रोता है। दरयाव-उदार।

पृ० २३४—चोज-विशेपता।

पृ० २३५—परचै-परिचय। भीमका-हाथी। करपै-खींचै।

परमारथ हिंडोलना

पृ० २३७-षटकील-छह स्थान पर कीले [illegible] रुवा-छेददार पत्थर जिसमें हिंडोला की रस्सी वाधी जाती [illegible]
कर्म निरोधै-क्रिया को रोकता है।

पृ० २३[illegible] [illegible]न वेटा जाया-मूल न[illegible]
[illegible] [illegible]